स्वर्गीय जैनमुनि प. स्वामि ज्ञानचन्द्रजीमहाराज



जन्म १९०३ दीक्षा १९६७ स्वर्गवास १९७२
चैत्र कृष्ण १२ बृहस्पतिवार बरनालामें



श्रीवर्द्धमानचरित्र.



जिसको

श्री श्री श्री १००८ उपाध्याय आत्मारामजी
महाराजके सुशिष्य स्वर्गवासी जैनमुनि
प० ज्ञानचन्द्रजी महाराजने
अति परिश्रमसे तय्यार किया



प्रकाशक
मेहरचन्द लक्ष्मणदास जैनी
संस्कृत पुस्तकालयाध्यक्ष लाहौर (पंजाब)
इन्होंने
बम्बईमें 'निर्णयसागर' छापखानेमें छपवाकर प्रसिद्ध किया

ई स १९१७] प्रथमावृत्ति २००० [म

Published by Mehrchand Laxmandas Jain Proprietors Sanskrit Book Depot Lahore and Printed by Ramchandra Yesu Shedge, at the Nirnaya-Sagar Press, 23 Kolbhat Lane Bombay

श्रीवीतरागाय नमः ॥

ग्रन्थकर्त्ताका परिचय ।



प्रिय महाशयगण ! इस ग्रन्थके लेखक श्रीमान् जैनमुनि प० **ज्ञानचन्द्रजी महाराज** हैं, आपका जन्म जिला लाहौर पट्टी नामक नगरमें लाला अमीचन्द्र ओसवालकी धर्मपत्नी श्रीमती खुशालदेवीकी कुक्षिसे १९५३ मे हुआ था आपने पट्टी वा क्षेमकरणमे मिडिलैपर्यन्त अंग्रेजी स्कूलमे शिक्षा प्राप्त की ।

वि० सम्वत् १९६७ मे श्री श्री श्री १००८ गणावच्छेदक वा स्थविरपदविभूषित स्वामी **गणपति रायजी महाराज,** श्री ३ स्वामी **शालिग्रामजी महाराज,** श्री ३ उपाध्याय स्वामी **आत्मारामजी महाराज** और श्री ३ स्वामी **खज़ानचन्द्रजी महाराज** ठाणे ६ लाला गौरी शकर और बाबू परमानद बी ए वकीलकी हवेलीमे चतुर्मास स्थित थे । सो उन्हीं दिनोंमे आप भी लाला जविन्देशाह आशाराम अर्जीनवीसके गृहमे आये हुये थे । आपको मुनिराजोंकी सगतिसे वैराग्यभाव उत्पन्न हो गया फिर आपने १९६७ मार्गशीर्ष कृष्ण पचदशीको फिरोजपुरमे लाला माणकचन्द्र साहूकारकी कोठीमे दीक्षा धारण की, आप श्री **उपाध्याय आत्मारामजी** महाराजके शिष्य हुये फिर आपने प्रेमपूर्वक विद्या अध्ययन करना आरम्भ किया

१ ... मरहठी गुरुमुखी आदि ·
ओंका भी

विद्या अध्ययन के पश्चात् जो आपको अन्य समय मिलता था उस समय आप लेख वा पुस्तक लिखते थे जिसका प्रभाव समाजमें बहुतही शुभ हुआ।

आपने स्वामी **गणावच्छेदक** और **उपाध्याय**जीके साथ निम्न प्रकारसे चतुर्मास किये।

१९६८ का चतुर्मास आपने अम्बाला नगरमे किया वहा पर आपने **"जैनआस्तिक सिद्धि"** नामक ग्रन्थ उर्दूमे लिखा।

सम्वत् १९६९ मे द्वितीय चतुर्मास लुधियाना में किया, इस चतुर्मास मे आपने **व्याकरणनिर्णय, सामायिकसूत्र** हिंदी पदार्थ वा भावार्थयुक्त और **गृहस्थधर्म** यह ग्रन्थ लिखे।

१९७० का तृतीय चतुर्मास आपका फरीदकोट नगरमे हुआ जिसमे आपने **"जैन बालोपदेश"** बहुतही सुन्दर पुस्तक लिखा।

१९७१ मे चतुर्थ चतुर्मास आपने कसूरमे किया वहा पर आपने **'ब्रह्मचर्यदिग्दर्शन'** पुस्तक लिखा।

१९७२ मे पचम चतुर्मास आपने नाभा रयासतमें किया, जहा पर श्री पूज्य **"मोतीरामजी महाराज का जीवनचरित्र"** लिखा और आपने इस चतुर्मासतक श्री उपाध्यायजी महाराजसे जैन धर्म के २४ सूत्र पढे और कई शास्त्रियोंसे प्रति चतुर्माससमें संस्कृत पढे थे सो आपने व्याकरण ग्रन्थोंमें शाकटायन प्रक्रिया सग्रह उज्ज्वलदत्तकृत उणादिवृत्ति, हेमचन्द्राचार्यकृत हेमलिङ्गानुशासन पठन किये। नीति और काव्य ग्रन्थोंमें आपने पचतन्त्र, हितोपदेश, नैषधचरित, पार्श्वाभ्युदय, श्रुतबोध

इत्यादि ग्रन्थ पढे । न्यायग्रन्थोंमें—आपने न्यायदीपिका, परीक्षामुखसूत्र, तत्त्वार्थसूत्र, तर्कसंग्रह दीपिकाटीका, न्यायमुक्तावली, स्याद्वादमञ्जरी प्रभृति ग्रन्थ पढे प्राकृत ग्रन्थोंमें—सूत्रोंके अतिरिक्त प्राकृत व्याकरण और देशीनाममाला पठन कीं । कोषोंमें—अमरकोष और धनञ्जयनाममाला पढी आपको संस्कृतका बहुतही अच्छा बोध हो गया था इसी कारण आपने "आचाराङ्गसूत्र" की संस्कृत लघुवृत्ति नामक वृत्ति लिखनी प्रारम्भ की थी । जिसके केवल प्रथमाध्यायके पांच उद्देश मात्रही आप लिखने पाए और साथही उक्त व्याकरणके कुछ अंशोंका हिंदी अनुवाद भी किया ।

आपकी यह भी एक अत्युच्च अभिलाषा थी कि भगवान् वर्द्धमान स्वामीजीका एक ऐसा जीवनचरित्र लिखा जावे जो प्रत्येक वर्ष भगवानके जन्म दिन पर परम उपयोगी हो इसी आशासे प्रेरित होकर आपने यह काम आपने हाथमें लिया किन्तु महाशोकसे लिखना पडता है कि आपको सबके दुर्भाग्य योग्य से विषमज्वर हो गया, फिर आप अपने गुरुओंसहित विहार करते हुये बर्नाला मंडीमें लाला मगनीराम गंगारामके स्थानमें विराजमान हो गये आपकी यथायोग्य साधुवृत्तिके अनुसार हकीम लाला अमीचन्द्र, शादीराम और हेमराजजीने औषधी की परन्तु कालगति ऐसी विचित्र है कि इसमे किसीका भी बल नहीं चलता अंतमें आप १९७२ चैत्रकृष्ण ११ बुधवार को दिनके ११ बजे अनशन व्रत धारण करके डेढ १॥ अनुमान इस नश्वर शरीरको छोडकर स्वर्गमें

१॥ यह समय आपके वियोगका प्रत्येक व्यक्तिके लिये हृदय-विदारक हुआ जो लेखिनीसे बाहिर है फिर आपके शरीरका द्वादश (१२) गृहस्पतिवारको बडे महोत्सवके साथ अग्निसस्कार किया गया सस्कारसमय अनुमान ५००० गृहस्थ उपस्थित थे और सस्कार आपके शरीरका केवल चन्दनमधुघृतके साथही किया गया था सस्कारके लिये श्रीमान हकीम अमीचन्द्र शादीराम फतेहचन्द, घाननरामजीने भूमि अपनी प्रदान की जो बहुतही सुन्दर स्थान है आपकी सदैवकाल स्मृतिके लिये धर्मशाला जैन बरादरीने एक मनोहर स्थानमी उस भूमिमें बनवा दिया है जो आराम बाग से वेष्टित है किन्तु जैनसबको आपके वियोगसे-असीम खेद हुआ है क्योंकि भावी आशाए आपपर सबको बहुतसी थीं, आपकी स्मरणशक्ति इतनी प्रबल थी कि आप प्रतिदिन २०० वा ३०० सस्कृत श्लोक कण्ठस्थकर लेते थे ।

आपने आप्तमीमासा जैन न्याय ग्रन्थके सब मूल श्लोक एकही दिनमें कण्ठस्थ किये थे और व्याख्यानकी शैली आपकी ऐसी उच्च कोटिकी थी कि जो श्रवण करता था वही मोहित हो जाता था बहुतसे मागधी लेखोंके आपने हिन्दी अनुवाद किये किन्तु शोक इस बातकाही है कि आपके आयुष्यकर्मने बल न दिया ।

चार मास आप रोगावस्थामें रहे इस समय आपकी असीम सहन शीलताको देखकर प्रत्येक व्यक्ति आश्चर्य करता था ।

मैं सदैव काल श्रीजिनेन्द्र देवसे प्रार्थना करताहू कि आपके समान ज्ञानमूर्तियां अनेक जैनमतमें प्रगट हों जिनके द्वारा जैनमत उच्च कोटिमें स्थित रहे ।

इस समय मैं आपका लिखा हुआ श्रीवर्द्धमानस्वामीजीका जीवनचरित्र जो कुछ अशमे अपूर्ण था उसको श्री उपाध्याय आत्मारामजी महाराजसे पूर्ण कराके प्रसिद्ध करनेमे उद्यत हुआ हू।

यद्यपि आपका उद्देश इस ग्रन्थको विस्तारपूर्वक लिखनेका था परन्तु कालकी विचित्रतासे अब यह सदैव जन्मोत्सवके दिन पठन करनेके लिये निबन्धरूपसेही बन सका इसलिये प्रत्येक व्यक्तिसे विनयपूर्वक मेरी विज्ञप्ति है कि प्रतिवर्ष चैत्रशुक्ला तेरह १३ के दिन भगवानका जन्मोत्सव मनाते हुये प्रसिद्ध मडपमे एक उपदेशक खडा होकर इस निबधको पढकर अवश्यही सुनावे जिसके प्रयोगसे समाजको भगवानका जीवनवृत्तात ज्ञात हो जावे और उसकी शिक्षासे अपने जीवनको सुधारे।

भवदीय

खजानची राम जैन

मत्री—श्री श्वे० स्था० जैनकुमार सभा लाहौर



श्रीवर्द्धमानाय नम

जैनमुनि प ज्ञानचन्द्रजीमहाराजविरचित

श्रीभगवान् वर्द्धमानस्वामीजी महाराज
का
जीवनचरित्र.





य पाठकगण! श्रीमहावीर स्वामी जैन मतमें जैनियोंके परमपूज्य परमात्मस्वरूप चतुर्विंशति तीर्थकरोंमेंसे अवसानके चौबीसवें तीर्थकर हुये हैं जिनका जीवनवृत्तात आज आपके सन्मुख प्रगट किया जाताहै—

आज से २५१५ वर्ष पहिले (ईस्वी सनसे ५९९ वर्ष पूर्व) इसी आर्य भरतक्षेत्रमें "कुण्डलपुर" नामक एक नगर वसता था जिसकी मेदिनी (पृथ्वी, जमीन) पुरवासियोंके अति-

रिक्त अन्य पुरुषोंको भी सुखदायिनी थी, जिसमें बहुत जल होनेके कारण अनाज भी उत्कटतासे उत्पन्न होता था जिस कारण दुर्भिक्ष आदि दु खोंका अभाव था, यावत् वह नगर नागरिक समस्त गुणोंसे मण्डित तथा पुरुषोंको अलकापुरी के समान प्रार्थनीय था. वहा सकलकलाविशारद, प्रजा-पालक, न्यायशील, शूराग्रणी, याचकों, दुःखियों, भयभीतों अशुभकर्मसे पीडितों की चिंताओं का भञ्जक तथा पूरक और न्यायाधीशोंका शिरोमणि, राजोंके अखिल गुणोंसे विभूषित महाराजाधिराज अधिपति ज्ञातवशीय काश्यप-गोत्रीय "सिद्धार्थ महाराज" राज्यलक्ष्मी भोगते तथा अनुशासन करते थे।

सिद्धार्थ महाराजका एक अनुजभ्राता भी था जो "सु-पार्श्व" नामसे नामाकित था।

महाराज सिद्धार्थ की राणीका नाम "त्रिशलाक्षत्राणी" था जो विदेह देशमें विशाला नामक नगरीके अधिपति सुप्रसिद्ध, परम प्रभावक, द्वादश व्रतोंके पालन करनेवाले, अत्यत दीर्घदर्शी महाराजाधिराज "चेटक" की पुत्री थी और लावण्यवती प्रौढयौवना तथा सर्वाङ्गपूर्णा थी, पातिव्रत धर्म जिसको परम रमणीय था, महिलाकी चतुः-षष्टी (६४) कलाओंमें निपुण तथा गृहस्थआश्रमके नियमों से परिचिता वा प्रधान सतियोंकी भी शिरोमणि थी।

महाराज सिद्धार्थ और राणीका परस्पर अयस्कान्तके सदृश अत्यन्त स्नेह तथा प्रेम था, जिससे गृहकी लक्ष्मी

ऐसे परम रमणीक प्रासादमें एक शय्या थी जो दोनों ओरसे उन्नत और मध्यमें गम्भीर थी, जिसके प्रत्येक पार्श्वमें अतीव सुकोमल तथा बहुमूल्य उपधान (सहाने) शोभायमान थे, उस शय्यापर ऐसे वस्त्र बिछे हुये थे जो कि मूल्यमें बहुत अधिक और भारमें बहुत हलके थे परन्तु अति कोमल, स्पर्शयोग्य और सुन्दर थे, जिनपर प्रधान सुगन्धियुक्त पाच वर्णके पुष्प बखेर हुये थे यावत् वह शय्या ऐसी थी कि जिसके देखतेही शरीर रोमाचित और मन प्रसन्न होता था।

किसी समय अर्द्ध रात्रिके व्यतीत हो जानेपर और अर्द्ध रात्रिके शेष रहने पर जब राणी पूर्वोक्त प्रासादमें प्रागुक्त शय्या पर सुखसे शयनकररही थी तो उसे निम्न प्रकारसे निम्नलिखित स्वप्न आने प्रारम्भ हुये।

प्रथम स्वप्नमें राणी क्यों देखती है कि एक हस्ती है जिसके चार दात हैं और शरीर बडा ऊंचा विशाल तथा महान् बलिष्ठ है, जिसका वर्ण दगरज वा दुग्ध और शशिकिरणोंसे भी अधिक उज्वल श्वेत वर्ण है, वह गजराज बल और कातिसे महोन्मत्त हो रहा है।

द्वितीय-एक वृषभ (बैल) देखा जो महा शुक्लवर्णीय, उन्नत स्कन्धयुक्त तथा तीक्ष्ण शृगधारक था जिसके रोम कोमल तथा मास उपचित और शरीरका गठन बडा प्रमोदजनक था।

तृतीय-सगमरमर पाषाणसे भी अधिक निर्मल, श्वेत-

वर्णीय, दर्शनीय, तीक्ष्ण नख वा दाढयुक्त, रक्तवर्णीय जिह्वा वा तालु तथा पीतवर्णीय उन्मिलित नेत्रोंवाले ऐसे प्रधान केसरी (मृगराज वा सिंह) को देखा।

चतुर्थ–चन्द्रमासे भी अधिक कांतिवाली सर्वाङ्गपूर्णा, परम आनन्द उत्पादिका, कमलवत् विकसितनेत्रा और प्रफुल्लितवदना ऐसी श्रीलक्ष्मी देवीको स्वप्नमें देखा।

पंचम–एक मनोहर पंचवर्णीय तथा प्रौढ सुगन्धित कुसुमोंसे रचित पुष्पमालाको देखा।

षष्ठ–एक चन्द्रमा देखा जिसकी षोडश (१६) कला चारों दिशाओंमें शीतल प्रकाशकर रही है जिसके दर्शन मात्रसे चित्त प्रसन्न होता था।

सप्तम–दश दिशाओंका तिमिरनाशक, रक्ताशोक वृक्षके समान लाल, सूर्य्यमुखी कमलोंका प्रतिबोधक, गगनदीपक, शीतविध्वंसक, उष्णतादायक और सहस्रकिरण ऐसे उदय होते हुये दिवसनाथ अर्थात् सूर्य्यको स्वप्नमें देखा।

अष्टम–राणीजीने एक ध्वजा देखी जिसमें पावकसे शुद्ध किये हुये प्रधान काञ्चनका दण्ड (डंडा) है ऊपरके भागमें विविध प्रकारके रत्न जटित है, ऊंचाईमें वह ध्वजा ऐसी देखी कि जिसको गगनचुम्बी कहना भी यथोचित है।

नवम–रत्नोंसे विभूषित, पुष्पोंसे मण्डित परम सुशोभित एक कलश देखा।

दशम–एक बडा दिव्य सरोवर देखा जो स्वच्छ वासनावाले तथा शीतल जलसे पूर्ण है, जिसमें पद्मकमल, शतपत्र,

महस्रपत्र आदि अनेक कमल वा पुष्प विकसित होकर अपनी तथा उस पद्मसरोवर की सुन्दरता दोगुनी चौगुनी कर रहे हैं, जिसपर चढनेके लिये चारों दिशाओंमें नेत्र-रंजक श्रेणिया बनी हुई हैं।

एकादश–उदधि शिरोमणि तथा अथाह जलके धारक क्षीरसागरको स्वप्नमें देखा।

द्वादश–अंधकारको तिलांजलि देनेवाला, बहुमूल्य मणियोंसे अलंकृत, प्रकाशकारक ऐसा आकाशस्थ अनुपम देव-विमान व्योममें उतरकर मेरे मुखमें प्रवेशकर गया है यह द्वादशवें स्वप्नमें देखा।

त्रयोदश–विविध वर्णीय तथा अनेक प्रकारके रत्नोंकी राशिको देखा जो मनुष्योंको तो क्या सुरोंको भी प्रार्थनीय वा दर्शनीय है।

चतुर्दश–मधु, घृत, तथा अन्य सुन्दर पदार्थोंद्वारा सिंचित अग्निकी नाईं परम शुद्ध, निर्मल, देदीप्यमान निर्धूम अग्नि शिखाको १४ वें स्वप्नमें देखा।

इस अन्तिम स्वप्नके पूर्ण होते ही राणीजीके नेत्र खुल गये, और निद्रा त्यागकर वह शय्यापर बैठ गई तब आये हुये समस्त स्वप्नोंको स्मरण करने लगी जब सर्व स्वप्न स्मरण कर लिये तब मन आलसरहित हो गया।

उस समय त्रिशलादेवी (राणी) उठकर राजाजीके पास गई और प्रणाम करके बैठकर सविनय प्रार्थना करने लगी कि हे स्वामिन्! मुझे आज रात्रिके समय पूर्वोक्त चतुर्दश

स्वप्न आये हैं सो कृपा करके सुनाओ कि इनका फल मुझे क्या होगा? महाराज सिद्धार्थ इन चतुर्दश स्वप्नोंको सुनकर तत्काल रोमाचित तथा अत्यत हर्षवान हुये और विचार कर बोले। हे देवि! यह समस्त स्वप्न जो तुमने रात्रि में देखे हैं बडे प्राभाविक उत्तम और शुभकारी हैं इनमें हमारे कल्याण, सुख, अर्थलाभ, भोगलाभकी प्रभूत वृद्धि होगी, अपितु नवमास तथा साढेसात दिनरात्रि पूर्ण होनेपर हमारे एक पुत्ररत्न उत्पन्न होगा जो स्वप्नोंसे निश्चित होता है कि वह बालक चक्रवर्ती या धर्मचक्रवर्ती (अर्हत्, देव) होगा क्योंकि यह स्वप्न इन दोनों पदधारियों की माताओंकोही आते हैं अन्यको नहीं. इसलिये हे राणी! यह स्वप्न बड़े कल्याणकारी शुभ तथा मगलीक हैं अतः आज से लेकर पहिलेसे भी अधिक हमारे पुण्योदयके दिवस आये हैं इस कारण इनसे प्रतीत होता है कि यह बालक हमारे कुलका दीपक, कुलोत्तेजक, वशकी वृद्धिकारक, महायशस्वी और त्रिभुवनपूज्य होगा. इस कारण तुझे इस गर्भकी बडे यत्न वा परिश्रमसे रक्षा करनी चाहिये। ऐसे स्वप्नफलको श्रवण करके राणी इतनी प्रमुदित (प्रसन्न) हुई कि मानो उसे उसी समयही सुतरत्नकी प्राप्ति हो गई।

तदनतर त्रिशलाराणी राजाको प्रणाम करके अपने प्रासादमें आगई और उसी शय्यापर आकर बैठ गई और उसी दिनसे गर्भकी रक्षाके लिये निम्नलिखित प्रतिज्ञा करली कि–आजसे लेकर मैं कोई भी ऐसा कार्य्य न करूंगी जिससे मेरे गर्भ

को किसी प्रकारसे कष्ट पहुचे अर्थात् अति उष्ण, अति शीत, अति रुक्ष, अति स्निग्ध, अधिक कटुक तथा मृदु आदि भोजन करना त्याग दिया और उसी दिनसे चिन्ता, शोक, भय, क्लेश, दुःख आदि अनुभव करना भी त्याग दिया. इस प्रकार सुख अथवा शांतिपूर्वक राणी गर्भकी रक्षा करने लगी।

सो अन्यदा नवमास तद्दु प्रतिपूर्ण तथा मार्द्ध सप्तदिन रात्रि व्यतिक्रांत होनेपर ग्रीष्म ऋतुके प्रथम मास द्वितीय पक्षमें चैत्रशुदि त्रयोदशीके दिन हस्तोत्तरा नक्षत्रका चन्द्रमासे योग होनेपर श्रीश्रमण भगवान् महावीर महाराजका महान् आरोग्यपूर्वक जन्म हुआ जिसको आज २५१५ वर्ष व्यतीत होगये हैं।

श्रीभगवान् वर्द्धमान (महावीर) स्वामीकी जन्मकुंडली



तब उसी समय चारों प्रकारके देव और ६४ इन्द्र अत्यन्त आनन्दसे एकत्रित हुये और बालकको मेरू पर्वतपर स्नानार्थ ले गये, स्नानके पश्चात् वादित्रोंकी ध्वनिके मध्यमें देवताओंने

प्रसन्नचित्तसे जन्मोत्सव मनाया तदुपरान्त निजमाताके पास स्थापन करके आकाशमें चले गये।

फिर उसी समय सिद्धार्थ महाराजको सुखदायक जन्मकी खबर दी गई राजा सुनतेही असीम प्रफुल्लित तथा हर्पित हुआ और समस्त नगरमें आनन्दोत्सव करनेके लिये आज्ञा भेज दी उसी समय सारे नगरमें प्रत्येक स्थानपर गन्धयुक्त उदक (जल) द्वारा रज (राख) को उपशान्त किया गया, विविध प्रकारके वादित्रोंके बजनेसे आकाशमडल गूंजने लगा, अनेक गायक अपने सुन्दर गीतोंसे नागरिक जनोंको प्रसन्न करने लगे चारों ओरसे मुनारिक वादी (धन्यवाद) के नाद सुनाई देने लगे घर २ में मगलाचार होने लगा नारी पुरुप सबने शक्तिके अनुसार धनव्यय करके जन्मोत्सव मनाया।

महाराज सिद्धार्थने कुमारके जन्मकी खुशीमें कारागारके बन्दियोंको छुडादिया तथा दशदिवसके लिये कर (महसूल) का लेना बन्दकर दिया. दानशालायें खोली गई जिनसे अनेक दुःखियों, अनाथों, धनहीनोंको अन्नपान मिलने लगा यावत् समस्त नगरमें यह उद्घोपणा करवाई गई कि कोई पुरुप किसीको दुःख न देवे, जिस किसीको किसी भी वस्तुकी इच्छा हो वह राजद्वारसे ग्रहण करे इस प्रकार कुण्डलपुर नगरमें जन्मका महोत्सव किया गया।

कुमारके माता पिताने प्रथम दिन कुलकी मर्यादाके अनुसार स्थिति कर्म किया, तृतीयदिन चन्द्रसूर्य्यदर्शन सस्कारके लिये [illegible] किया गया, पष्ठ दिवसमें

जागरना की, एकादश दिवस व्यतीत होनेपर अशुचिकर्ममे निवृत्तिकी तथा द्वादशवें दिवस के प्राप्त होनेपर विस्तीर्ण तथा प्रभूत अन्नपान खाद्य स्वाद्य आदि चारों प्रकारका आहार बनावाकर मित्र, ज्ञाति, सज्जन, सम्बन्धीआदि सकल (सब) को आमन्त्रण दिया, इसके अनतर स्नानमें शुद्ध होकर प्रधान तथा विविध प्रकारके आभरण अथवा अलकार-द्वारा शरीरको विभूषित किया, इसके उपरान्त महाराज सिद्धार्थने सर्व ज्ञातियोंसे मिलकर चार प्रकारके आहारका भोजन किया।

भोजनके पश्चात् सर्व सम्बन्धियोंने परम सुन्दर, उज्ज्वल, विशुद्ध, सुगन्धमय जलसे हस्तप्रक्षालन किये, पुनः भगवान् के माता पिताने आगत सम्बन्धियो, सज्जनो और स्वजातियोंका विस्तीर्ण पुष्प, गन्ध, वस्त्रालकारोंसे यथोचित सत्कार वा सन्मान किया और उनके सन्मुख राजा राणी इस प्रकारसे बोले।

हे देवानुप्रियो! जिस दिनसे यह कुमार गर्भमें आया है उसी दिनसे हमारे राज्यमें हिरण्य, स्वर्ण, धन, धान्य, प्रतिष्ठा, सन्मान और राज्यकी अतीव वृद्धि हो रही है अत इसी कारणसे गुणानुसार हम इस कुमारका नाम "वर्द्धमान कुमार" ऐसे स्थापन करते हैं ऐसे आनन्दवर्धक शब्दोंको श्रवण करके सबने धन्यवाद दिया इस प्रकार कथन करके सब जनोंको बडे सत्कार वा सन्मानसे विसर्जन कर दिया।

तदनतर श्रीवर्द्धमान स्वामीजी कुमारावस्थामें पर्वतकी

कन्दरा (गुफा) में वृक्षके बढनेकी उपमासे निर्भय तथा सुखपूर्वक वृद्धि पाने लगे।

राणीजीने भगवानकी रक्षाके लिये पाच धायमाता नियुक्त कर दीं यथा—

प्रथम–दुग्ध पिलानेवाली
द्वितीय–मंजन करानेवाली
तृतीय–आभरणोंसे विभूपित करनेवाली
चतुर्थ–अनेक प्रकारकी क्रीडा करानेवाली
पचम–अकमें स्थान देनेवाली

इस प्रकारसे पाच धात्रीमाता भगवानका पालन पोपण करनेमें उद्यत हुई और कुमार यथाक्रमसे वृद्धि प्राप्त करने लगे।

इसके पश्चात् क्रम पूर्वक बालावस्थाको त्याग कर भगवान् यौवनावस्थाको प्राप्त हुए और सर्व कलाकुशल, *उद्भट दीर्घदर्शी, अत्यत बलवान् और महान् शूरवीरोंके भी अ-ग्रणी (मुखिया) हुये।

भगवानके अनेकनाम प्रसिद्ध हुये यथा–महावीर, वर्धमान, श्रमण, ज्ञातवशीय, ज्ञातपुत्र इत्यादि परन्तु विशेप करके उनके तीन नाम प्रसिद्ध हुए यथा–मातापिताने वृद्धिकारक होनेके कारण "वर्द्धमान" नाम दिया, तथा सहजही शाति

---

* प्रत्येक तीर्थंकर भगवान्को निश्चय करके गर्भ में ही पाच ज्ञानों में से तीन ज्ञान होते है यथा–मति, श्रुति, अवधिज्ञान, सो इसी प्रकार श्रमण भगवान् महावीरजीको भी तीन ज्ञान थे।

क्षमा और शीतल स्वभाव होनेसे "श्रमण" नाम विख्यात हुआ और महान् उत्कट वा उद्भट परिषह सहन करनेसे "महावीर" नाम प्रसिद्ध हुआ।

यद्यपि बाल्यावस्थासेही आपका मन सांसारिक सुखों वा भोगोंसे विरक्त था तथा स्पर्श, रस, गन्ध, शब्दरूपादि विषयोंसे निवृत्ति और वैराग्य भावमें अधिक प्रवृत्ति थी और आपकी यह अत्युच्च अभिलाषा थी कि गृहस्थाश्रमको त्यागकर मुनि आश्रममें प्रवेश करूं, तदपि माता पिताके अत्यन्त आग्रहसे (अर्थात् मातापिताकी आज्ञाका पालन करना पुत्रका कर्तव्य है इस उद्देशको मुख्य रख कर) आपको गृहस्थाश्रममें ही निवास करना पडा, तथा परम विख्यात महाराजाधिराज "प्रश्नजित" राजाकी शीलशिरोमणि, प्रिय पुत्री यशोदाजीसे विवाह भी करना पडा परन्तु तौ भी आप निवृत्तिके मार्गसे पीछे नहीं हटे और वैराग्यभावको मनसे जाने नहीं दिया यथोक्तम्—

घृष्टं घृष्टं पुनरपि पुनश्चन्दनञ्चारगन्धम्।
छिन्नं छिन्नं पुनरपि पुनश्चेक्षुकाण्डं रसालम्॥
दग्धं दग्धं पुनरपि पुनः काञ्चनं कान्तिवर्णम्।
प्राणान्तेऽपि प्रकृतिविकृतिर्जायते नोत्तमानाम्॥

अर्थ—पुनः पुनः चदनको घिसने पर भी चन्दन पूर्वसे प्रधान सुगन्धि देता है, वारम्वार इक्षु (गन्ना) को छेदन करनेसे इक्षु अधिक मीठा रस देता है॥ अनेक वार स्वर्णको

अग्निमें दग्ध करने पर भी काञ्चन अधिक कान्तिवर्ण युक्त (मनोहर रंगवाला) होता है, इसी प्रकार प्राणान्त कष्टके आने पर भी उत्तम पुरुषोंका स्वभाव परिवर्तन नहीं होता।

इस वाक्यके अनुसार भगवान् मातापिताके अतीव आग्रहसे गृहस्थाश्रममें रहते हुये भी क्षान्ति, दान्ति, निरारम्भी और प्रमादरहित थे आपके मातापिताने बहुत वार आपको राज्यसिंहासन प्रदान करनेके लिये प्रस्तुत किया परन्तु बडे भ्राताके जीवित होने पर राज्यसिंहासन पर बैठना अयोग्य समझकर आपने यह बात स्वीकार न की।

सदैव काल आपके मनमें साधु वृत्ति धारण करनेके तीव्र सकल्प भ्रमण करते रहते थे अतः आपने अनेक वार मातापितासे दीक्षा ग्रहण करनेके लिये प्रार्थना की, परन्तु आपको आज्ञा न मिली तथा मातापिताने कहा, हे वत्स! जब तक हम जीवित है तब तक तुम दीक्षा न लो, हमारी मृत्युके पश्चात् जो तुम्हारी इच्छा होवे सो करना।

महाराज सिद्धार्थ और त्रिशलाराणी यह दोनों श्रीश्री सर्वज्ञ सर्वदर्शी परम पूज्य २३ वें तीर्थंकर भगवान् पार्श्वनाथजी महाराजके व्रतधारी श्रावक थे इसी कारण गृहस्थ धर्ममें परम दृढ तथा अनुरक्त थे, सदा धर्मध्यानमें समयपूर्ण करते थे।

प्रिय पाठकवृन्द! कालकी गति बडी विचित्र है सर्व नर इससे भय खाते है क्योंकि यह इन्द्र, नरेन्द्र, भूपेन्द्र, चक्रवर्ती, अर्हन्त, बलदेव, वासुदेवादि समस्तके शिरोपरि

रक्षाटन (पहरा) करता है काल सबसे बलि है तथा इसे किसीका भी पक्षपात (लिहाज) नहीं है यह न तो धनाढ्य देखता है और न धनहीन, न विद्वान् और न मूर्ख, न बालक और न वृद्ध, जिस किसीकी आयु पूर्ण हो जाती है चाहे वह कोई भी क्यों नहो शीघ्र ही उसे स्वलोकसे छुडाकर परलोकमें स्थान देता है।

सज्जनों! इस परिवर्तीनि संसारमें प्रत्येक जीवने परलोकरूपी पथका पथिक बनना है क्योंकि सदैव कालके लिये न कोई भूतकालमें स्थिर रहा है और नही भविष्यत् कालमें सदाके लिये स्थिर रहेगा।

इसी प्रकार महाराज सिद्धार्थ और त्रिशलादेवी धर्मध्यान में तीन संकल्पोंसे परिश्रम कर रहे थे कि अकस्मात् आयु पूर्ण होनेके दिन निकट आगये।

इस लिये भगवान्के मातापिताने समाधि मृत्युके लिये शांतिपूर्वक सस्तारक अनशन करदिया और कालके अवसर पर काल करके परम शुभ प्रणामों अथवा अध्यवसायों और अत्यन्त शुद्ध लेश्याओं द्वारा द्वादशवें अच्युत नामक स्वर्गको प्राप्त किया मृत्युके पश्चात् यथाविधि अग्निसंस्कार किया गया नगरमें महाशोक छा गया क्योंकि महाराजसिद्धार्थ बडे न्यायशील थे और प्रजाके हितचिंतक वा पिताके सदृश रक्षक थे।

ऐसे समयमें श्रीश्रमण भगवान् महावीरजीने अपने कोमल वचनोंद्वारा अनित्य वा अशरण भावनायें सुनाकर

प्रजाके समाश्वासन बंधाये कुछ दिनोंके पश्चात् शोक दूर हुआ आपके ज्येष्ठ भ्राता नदिवर्द्धनजी और समस्त प्रजाने एकत्रित होकर आपको राज्यसिंहासन देनेके लिये प्रार्थना की परन्तु आपने इसे स्वीकार न किया परन्तु इस प्रकार कहा, हे विज्ञगणों! मेरी प्रतिज्ञा अब पूर्ण हो चुकी है इस कारण मैं अब मुनिवृत्तिको अंगीकार करूगा अतः यह राज्य मेरे ज्येष्ठ भ्राता नदिवर्द्धनजीकोही देना उचित है ऐसे शब्द भाषण करके शीघ्रही भगवान्ने राज्यमुकुटको स्वहस्तसे नदिनर्द्धनजीके शिरोपरि स्थापित कर दिया और समस्त प्रजाके समक्ष अपने अपना मनोहर व्याख्यान दिया, भ्रातृगण! आजसे लेकर महाराजाधिराज सिद्धार्थके पदपर श्रीयुत नदिवर्द्धनजीको नियत किया जाता है अतः नदिवर्द्धनजी ही राज्य करेंगे इस लिये प्रत्येक जन का यह परम धर्म है कि वह नंदिवर्द्धनजीकी आज्ञाको शिरोपरि धारण करे (इत्यादि) ।

इसके अनतर समस्त राज्यमें उद्घोषणा कर दी गई कि सर्व पुरुष उत्सव करे, ऐसे होने पर सारे नगर में वादित्र वजने लगे घर २ में मगलाचार होने लगा, गायक गीतोंद्वारा नागरिक जनोंको प्रसन्न करने लगे अतः आनन्दसे पुनः समय व्यतीत होने लगा ।

जिस समय आपकी आयु २८ वर्षकी हुई तो आपने अपने ज्येष्ठ भ्राता नदिवर्द्धनजीसे सयम लेनेके लिये आज्ञा मांगी और एकान्तमें ऐसे कहा कि–हे भाई! अब मैं ने आगार वृत्तिको त्याग कर अनगार धर्मको ग्रहण करने

दृढ निश्चय कर लिया है इस लिये आप मुझे आज्ञा दें जिस्से कि मैं स्वजीवनको सफल करू।

ऐसे वचन सुनते ही महाराज नंदिवर्द्धन महादुःखित होकर विलाप करने लगे और रुदन करते हुये ऐसे बोले, हे भ्रातः! अभी बहुत दिवस नहीं व्यतीत हुये हैं कि हमारे मातापिता स्वर्गवासी हुये हैं तथा इसी समय तुमने दीक्षाके लिये निश्चयकर लिया है यह उचित नहीं है मैं दो वियोग किस प्रकारसे सहन कर सक्ता हूं, मुझे प्रथमसे भी अधिक दु:खित मत करो तुम्हारे बिना मेरा और कोई दूसरा सहोदरभी नहीं है जिसके साथ मैं कुछ सम्मति कर सकूं तथा अपने दुःख सुखको सुना सकूं इस लिये राज्यभवन में रहकर ही जो कुछ करने की इच्छा हो कर सक्ते हो, क्या गृहस्थाश्रममें धर्म नहीं हो सक्ता? और मुनिवृत्ति में क्या विशेष धर्म होता है, जो आत्मा संसार में रहता हुआ भी राग, मोह, काम, कपट और विषयादि दूषणोंको त्याग दे तो क्या वह साधु कहलाने के योग्य नहीं है, अवश्य है, तथा जो मुनि होकर भी रागादिसे निवृत्ति नहीं करता तो क्या वह गृहस्थाश्रमका त्याग करनेमात्रसे ही भिक्षु बन सक्ता है कदापि नहीं, इस लिये, हे भाई! तुम गृहस्थमें ही रहो और अपनी इच्छानुसार धर्म्म करो।

यथोक्त—

वनेऽपि दोषाः प्रभवन्ति रागिणा।
गृहेऽपि पञ्चेन्द्रियनिग्रहस्तपः॥

अकुत्सिते कर्मणि यः प्रवर्त्तते ।
निवृत्तरागस्य गृहं तपोवनम् ॥

√अर्थ–विषयासक्त चित्तवालोंको वन में भी लोभमोहादि पाप वृत्तिया लगती हैं। चक्षु कर्णादि इन्द्रियोंका सयमरूप तप नियम तथा धर्मानुष्ठान घरमें भी हो सक्ता है। जो पुरुष निन्दारहित पुण्यकर्मोंको करता है और जो विषयवासनादिसे विरक्त है ऐसे धर्मात्मा पुरुषके लिये गृह ही तपोवन है अर्थात् उसके लिये गृह ही धर्मानुष्ठानादि करनेका स्थान है इस कारण, हे भाई! मेरे ऊपर कृपा करके वीतराग भावसे गृहस्थाश्रममें ही जीवन व्यतीत करो अर्थात् भिक्षु बनने वा अटवीमें गमन करनेके सकल्प त्याग दो और मेरी इस दुःख-भरी प्रार्थनाको स्वीकार करो, जब भगवानने सर्वथाही प्रार्थना अस्वीकार की तब नंदिवर्द्धनने दो वर्षके लिये अत्यंत आग्रह किया।

यह प्रार्थना सुनकर भगवानने देशकाल देखकर अथवा ज्येष्ठ भ्राताकी आज्ञाको उच्च समझकर दो वर्षपर्यन्त और भी ससारमें रहना स्वीकार किया, किन्तु निर्जल तप कर्म वा इन्द्रियनिग्रह, सदाचार धर्म और आत्मा दमनादिमें पूर्वसे भी अधिक प्रवृत्त हुए।

इस प्रकार सुखपूर्वक समय व्यतीत करते हुये जब आपको एक वर्ष अतिकान्त हो गया तब आपके मनमें *वर्षीदान

* यह एक स्वाभाविक नियम है–कि जब तीर्थंकर भगवान्के दीक्षित होनेमें एक वर्ष रह जाता है तब वह एक वर्ष तक दान करते हैं।

देनेके विचार उत्पन्न हुये, पुनः आपने महाराज नंदिवर्द्धन-जी की आज्ञा ग्रहण करके सर्वत्र निम्न प्रकारसे उद्घोषणा करवा दी कि—

आजसे लेकर इस क्षत्रिय कुण्डलपुर नगरमें एक वर्षतक प्रतिदिन प्रातःकालसे लेकर ६ घडी पर्यन्त अन्न, वस्त्र, आभूषण, धनादिका याचकोंको यथेष्ट दान दिया जावेगा, जिस किसीकी इच्छा हो ग्रहण करे।

इस घोषणाको सुनकर दूर २ देश देशान्तरोंके अनेक याचक कुण्डलपुरमें एकत्रित हो गये, तब भगवान्ने दान देना प्रारम्भ किया, प्रतिदिन एक क्रोड आठ लाख *सुनईये का दान करते थे इसी प्रमाणसे भगवान्ने तीन अरब, अट्ठासी करोड अस्सी लाख सुनईयोंका दान किया।

जब आपको पूर्वोक्त परिमाणसे दान देते एक वर्ष हो गया और दो वर्ष की गृहस्थस्थिति की प्रतिज्ञा भी पूर्ण हो चुकी, तब आपने सयम लेनेके लिये अपना अभिप्राय महाराज नंदिवर्द्धनजीके सामने प्रगट किया, आपके ज्येष्ठ भ्राताने बहुत प्रकारसे नम्र भावसे फिर प्रार्थना की परन्तु आपने स्वीकार न की क्योंकि प्रतिज्ञाका समय पूर्ण हो चुका था।

तब महाराज नंदिवर्द्धनने (जिसको एक सहस्र पुरुष उठा सकें) एक शिविका (पालकी) बडे समारोहसे तय्यार कर-

* एक सुनइया अनुमान १६ मासे या ८० रत्तीका सर्वांग स्वर्णमय होता है इस प्रमाणसे एक वर्ष में दान दिये हुये समस्त सुनईयोंका प्रमाण (वजन) एक लाख बत्तीस हजार चालीस १३२०४० मन होता है।

वाई जो विविध प्रकारके मणियों, रत्नों वा अलकारोंसे विभूषित थी और भगवान् प्रधान सुगन्धियुक्त जलसे स्नान करके वा अर्द्धहार, हार मुकुटादि अनेक प्रकारके भूषणोंसे अपने शरीरको अलकृत करके उस शिविकामें बैठ गये तथा बडी ऋद्धिसे वा सहस्रों लक्षों देवो और पुरुषोंके समुदायसे प्रवृत्त हुए २ सैकडों वादित्रोंके गगनव्यापी नादोंद्वारा बडे महोत्सवके साथ कुण्डलपुर नगरमें हेमन्त ऋतुके प्रथम मासके प्रथम पक्ष में मार्गशिर वदि दशमीको सुव्रत नामक दिवसके अपराण्ह समय विजय मुहूर्त्तमें हस्तोत्तरा नक्षत्रका चन्द्रमासे योग होने पर वनकी ओर चल पडे।

जब मन न्यात खड नामक उद्यानमें पहुचे तब पूर्व दिशा की ओर मुख करके वह सहस्र पुरुष वाहिनी शिविका रखी गई तब भगवान् श्रीवर्द्धमान स्वामीजी उसमें से उतर कर बडे रमणीय वा मनोहर विरचित आसनपर पूर्व दिशाको मुख करके बैठ गये और समग्र आभूषण उतार डाले तथा स्वयही पच मुष्टि लोचकी अर्थात् शिरपर जितने भी केश थे वह सब अपने हाथसे उखाडकर उतार दिये उस समय देवों और मनुष्यों की परिषद् चित्र के समान चुप चाप एकाग्र मन से देख रही थी।

अनतर भगवान् ने उस परिषद् के मध्यमें निम्न लिखित सूत्रद्वारा सामायिक चारित्र ग्रहण किया—

"सिद्धाण नमोक्कारेणं करेति, सव्व मे अकरणिज्जं पाव कम्मं त्तिकट्टु सामायियं चरित्त पडिवज्जितित्ता"

अर्थ—मैं सिद्धोंको नमस्कार करके प्रतिज्ञा करता हू कि-आज से लेकर मैं कभी *पाप कर्म नहीं करूगा तथा पाच महाव्रत अर्थात् अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य्य और अपरिग्रह को धारण करता हू, यत्नसे मैं कदापि बिना देखे न चलूगा, बिना विचारे न बोलूगा, दोषरहित अन्न पानी ग्रहण करूगा, वस्तुओं को उठाते रखते सदा यत्नके साथ वर्त्ताव करूगा और मलोत्सर्गादि कार्यों में भी यथायोग्य यत्न करूगा मैं मन वचन काया इन तीनों गुप्तियों को धारण करता हू यदि आजसे लेकर मुझे कोई देवता, देवी, मनुष्य अथवा तिर्यंच सम्बन्धी उपसर्ग होगा तो मैं उसे शातिपूर्वक सम्यक् प्रकारसे सहन करूगा।

यदि द्वाविंशति (२२) †परिषहोंमें से मुझे कोई परि-

---

* (१) प्राणातिपात (२) मृषावाद (३) अदत्तादान (४) मैथुन (५) परिग्रह (६) क्रोध (७) मान (८) माया (९) लोभ (१०) राग (११) द्वेष (१२) कलह (१३) अभ्याख्यान (१४) पैशून्य (१५) परपरिवाद (१६) रतिअरति (१७) मायामोषा (१८) मिथ्या दर्शन शल्य इनको १८ पापकर्म कहते हैं

† द्वाविंशति परिषहोंके निम्न लिखित नाम हैं (दिगिच्छापरिसहे) क्षुधाका परिषह १ (पिवासापरिसह) तृषाका परिषह २ (सीयपरिसहे) शीतपरिषह ३ (उसिणपरिसह) उष्णपरिषह ४ (दंसमसगपरिसहे) दंशमसकपरिषह ५ (अचेल परिसहे) अचेलपरिषह ६ (अरइपरिसहे) अरतिपरिषह ७ (इत्थीपरिसहे) स्त्रीपरिषह ८ (चरियापरिसहे) चर्य्यापरिषह ९ (निसीहियापरिसहे) बैठनेका परिषह १० (सिज्जापरिसहे) शय्यापरिषह ११ (अक्कोसपरिसहे) अक्रोश परिषह १२ (वहपरिसहे) वधपरिषह १३ (जायणापरिसहे) याचनापरिषह १४ (अलाभपरिसहे) अलाभपरिषह १५ (रोगपरिसहे) रोगपरिषह १६ (तण फासपरिसहे) तृणस्पर्शपरिषह १७ (जल्लपरिसहे) प्रस्वेदकापरिषह १८ (सक्का-

यह होगा तो मैं उसे निःकषाय होकर सहूंगा और जबतक मुझे केवल ज्ञान उत्पन्न न होगा तबतक मैं व्याख्यानादि क्रियाओं से भी पृथक् रहूंगा

इस प्रकारकी प्रतिज्ञाकरके भगवानने वहांसे विहार कर-दिया तब आपके ज्येष्ठ भ्राता महाराज नंदिवर्द्धनजी आपके वियोगमें परम दुःखित वा व्याकुल होकर पीछे लौटते समय महाविलाप करने लगे. हतोत्साह वा अधीर होकर अपने दुःखको निम्न प्रकारसे प्रगट करने लगे यथा—

त्वया विना वीर कथं व्रजामो,
गृहेऽधुना शून्यवनोपमाने ।
गोष्ठीसुखं केन सहाचरामो
भोक्ष्यामहे केन सहाथ बंधो ॥

अर्थ–हे भाई ! तुझ अद्वितीय (अकेले) को छोडकर हम शून्य वन समान स्वगृहमें तेरे विना किस प्रकार जायें अर्थात् तेरे विना राजभवनमें जाने और राज्य का सुख भोगनेको हमारा मन नही चाहता है. हे वीर ! तेरे विना मेरा कोई सहोदर भी नहीं है इस लिये किसके साथ मैं वार्त्तालापादि क्रियाओंको करूंगा तथा किसके साथ बैठ कर भोजन किया करूंगा ।

रपुरक्कारपरिसहे) सत्कारपुरस्कारपरिषह १९ (पन्नापरिसहे) प्रज्ञापरिषह २० (अन्नाणपरिसहे) अज्ञानपरिषह २१ (दसणपरिसहे) दर्शनपरिषह २२ इनके सशहोनेसे सम्यक् प्रकारसे श्रीभगवान्ने इनको सहन किया इनका पूर्ण विवण श्री उत्तराध्ययनजी सूत्रके द्वितीयाध्यायसे जानना चाहिए ।

अर्थ—मैं सिद्धोंको नमस्कार करके प्रतिज्ञा करता हू कि-आज से लेकर मैं कभी *पाप कर्म नहीं करूंगा तथा पांच महाव्रत अर्थात् अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य्य और अपरिग्रह को धारण करता हू, अनसे मैं कदापि बिना देखे न चलूंगा, बिना विचारे न बोलूंगा, दोषरहित अन्न पानी ग्रहण करूंगा, वस्तुओं को उठाते रखते सदा यत्नके साथ वर्त्ताव करूंगा और मलोत्सर्गादि कार्यों में भी यथायोग्य यत्न करूंगा मैं मन वचन काया इन तीनों गुप्तियों को धारण करता हू यदि आजसे लेकर मुझे कोई देवता, देवी, मनुष्य अथवा तिर्यंच सम्बन्धी उपसर्ग होगा तो मैं उसे शांतिपूर्वक सम्यक् प्रकारसे सहन करूंगा।

यदि द्वाविंशति (२२) †परिषहोंमें से मुझे कोई परि-

---

* (१) प्राणातिपात (२) मृषावाद (३) अदत्तादान (४) मैथुन (५) परिग्रह (६) क्रोध (७) मान (८) माया (९) लोभ (१०) राग (११) द्वेष (१२) कलह (१३) अभ्याख्यान (१४) पैशून्य (१५) परपरिवाद (१६) रतिअरति (१७) मायामोषा (१८) मिथ्या दर्शन शल्य इनको १८ पापकर्म कहते हैं

† द्वाविंशति परिषहके निम्न लिखित नाम हैं (दिगिन्छापरिसहे) क्षुधाका परिषह १ (पिवासापरिसहे) तृषाका परिषह २ (सीयपरिसहे) शीतपरिषह ३ (उसिणपरिसहे) उष्णपरिषह ४ (दसमसगपरिसहे) दंशमसकपरिषह ५ (अचल परिसहे) अचलपरिषह ६ (अरइपरिसहे) अरतिपरिषह ७ (इत्थीपरिसहे) स्त्रीपरिषह ८ (चरियापरिसहे) चर्य्यापरिषह ९ (निसीहियापरिसहे) बैठनेका परिषह १० (सिज्जापरिसहे) शय्यापरिषह ११ (अक्कोसपरिसहे) अक्रोश परिषह १२ (वहपरिसहे) वधपरिषह १३ (जायणापरिसहे) याचनापरिषह १४ (अलाभपरिसहे) अलाभपरिषह १५ (रोगपरिसहे) रोगपरिषह १६ (तण फासपरिसहे) तृणस्पर्शपरिषह १७ (जल्लपरिसहे) प्रस्वेदनापरिषह १८ (सक्का-

यह होगा तो मैं उसे निःकषाय होकर सहूगा और जबतक मुझे केवल ज्ञान उत्पन्न न होगा तबतक मैं व्याख्यानादि क्रियाओं से भी पृथक् रहूगा

इस प्रकारकी प्रतिज्ञाकरके भगवान्ने वहासे विहार कर-दिया तब आपके ज्येष्ठ भ्राता महाराज नंदिवर्द्धनजी आपके वियोगसे परम दुःखित वा व्याकुल होकर पीछे लौटते समय महाविलाप करने लगे. हतोत्साह वा अधीर होकर अपने दुःखको निम्न प्रकारसे प्रगट करने लगे यथा—

त्वया विना वीर कथ व्रजामो,
गृहेऽधुना शून्यवनोपमाने ।
गोष्ठीसुख केन महाचरामो
भोक्ष्यामहे केन सहाथ बंधो ॥

अर्थ-हे भाई ! तुझ अद्वितीय (अकेले) को छोडकर हम शून्य वन समान सगृहमें तेरे विना किस प्रकार जायें अर्थात् तेरे विना राजभवनमें जाने और राज्य का सुख भोगनेको हमारा मन नहीं चाहता है हे वीर ! तेरे बिना मेरा कोई सहोदर भी नहीं है इस लिये किसके साथ मैं वार्तालापादि क्रियाओको करूगा तथा किसके साथ बैठ कर भोजन किया करूगा ।

रपुरक्कारपरिसहे) सत्कारपुरस्कारपरिषह १९ (पन्नापरिसहे) प्रज्ञापरिषह २० (अन्नाणपरिसहे) अज्ञानपरिषह २१ (दसणपरिसहे) दर्शनपरिषह २२ इनके सशहोनेसे सम्यक् प्रकारसे श्रीभगवान्ने इनको सहन किया इनका पूर्ण विवर्ण श्री उत्तराध्ययनजी सूत्रके द्वितीयाध्यायसे जानना चाहिए।

सर्वेषु कार्य्येषु च वीर वीरे-
त्यामन्त्रणदर्शनतस्तवार्य ।
प्रेमप्रकर्षादभजाम हर्षं
निराश्रयाश्चाथ कमाश्रयामः ॥

अर्थ—हे वीर! अखिलकार्य्यों के विषयमें मैं तुमको वीर २ कहकर बुलाता था, तुम्हारे दर्शन मात्रसे मैं प्रफुल्लित तथा हर्षित हो जाता था, हे आर्य! तेरे आश्रय होकर मैं भयरहित होकर सुख से आयु पूर्ण कर रहा था सो हे बन्धु! अब मैं किसको वीर कहूंगा, किसे देखकर प्रसन्न होऊंगा और किसके आश्रित होकर समय व्यतीत करूंगा।

अतिप्रिय बान्धव दर्शन ते
सुधाञ्जन भावि कदास्मदक्ष्णोः ।
नीरागचित्तोऽपि कदाचिदस्मान्
स्मरिष्यसि प्रौढ गुणाभिराम ॥

अर्थ—हे बान्धव! आपका दर्शन अतिप्रिय है इस लिये फिर कब अपने सुदर्शनरूपी अमृत शुद्धाञ्जनसे हमारे नेत्रों को तृप्त करोगे अर्थात् कब दर्शन दोगे, हे मोहरहित मनवाले तथा प्रौढ गुणवाले! निस्सन्देह आप रागादि दोषों से वर्जित हैं तौ भी स्नेहसे आर्द्र हृदयवाले! मुझे कभी न कभी याद करोगे।

इस प्रकार बहुत विलापजनक शब्द बोलते हुये महाराज नन्दिवर्द्धन अन्त में सारे परिवार सहित निज नगरमें आगये और सर्व पुरुष भी अपने २ स्थानों पर चले गये।

अनंतर श्रीश्रमण भगवान् महावीरजी महाराज शंखके समान निरंजन, जीवके समान अप्रति हतगति, वायुके सदृश अप्रतिबद्ध निहारी और सिंहकीनाई निर्भीक होकर कर्मरूपी शत्रुओंको हनन करते हुये विचरने लगे, जिन्हों ने जीवित रहने की आशा और मृत्युके भयको मनसे नितात उठा दिया. चाहे कैसा भी भीम से भीम कष्ट क्यों न आजावे, भगवान् लेशमात्र भी क्रोध नहीं करते थे परन्तु उस परिषह वा उपसर्ग को बडे साहस वा धीरता से सहन करते थे ।

पुनः आपने तपकर्म करना प्रारम्भ किया ।

एकबार आपने ६ मास पर्यंत तपस्याकी अर्थात् षट्मास तक आपने निर्जल तथा निराहार व्रत धारण किया पुनः दूसरी वार आपने पाच दिन न्यून (कम) षट्मास पर्यन्त तप किया. नव वार (९ दफा) आपने चार २ मासपर्यन्त अन्नपान नही किया. दोवार तीन २ महीने वा दो वार ढाई २ महीने और ६ वार दो मासपर्यंत आप निर्जल व्रत धारी रहे।

एक मास भर निरशन व्रती रहना ऐसे आपने द्वादश (१२) वार एक २ मास किये, अर्द्ध २ मास तक (पंद्रह २ दिनतक) व्रतधारण करना ऐसे आपने ७२ वार १५-१५ व्रत किये। २२९ वार आपने दो २ दिन तक क्षुधा सहन की, उपरोक्त तपमें आप दिनभर पद्मासन करके और रात्रि को खडे ध्यान (कायोत्सर्ग) किया करते थे

तपस्याके अतिरिक्त आपने *भद्रप्रतिमा (प्रतिज्ञा), महाभद्र प्रतिमा तथा सर्वतोभद्र प्रतिमा और भिक्षुकी द्वादशवीं प्रतिमा ग्रहण की जो श्री दशाश्रुत स्कध के ७ वें अध्यायमें सविस्तर वर्णन की गई है फिर आप अनेक देशों में पर्यटन करते हुये एक समय आप अनार्य देशमें पधार गये वहापर आपको अनेक दुःख वा परिषह सहन करने पडे जिनके सुनने मात्रसे हृदय कापता है और रोम खड़े हो जाते हैं।

बहुत वार म्लेच्छ पुरुषोंने आपके पीठे बडे बलवान् वा तीक्ष्ण नख वा दांतोंके धारक श्वान लगा दिये वह श्वान भगवान् के शरीर से मांस के खड के खड खींचके ले जाते थे और फिर म्लेच्छ पुरुष उन व्रणोंपर (जखमोंपर) क्षार लवणादि भी डाल देते थे जिससे भगवान्को बडी तीव्र और घोर वेदना होती थी परन्तु आपने उन वेदनाओंको ऐसी धीरता से सहन किया कि मन से भी उन म्लेच्छोंपर तनक मात्र दुष्ट अध्यवसाय नहीं किए।

यदि आपको कोई दुष्ट असीम कष्ट भी देता था तो आप उसे कुछ भी नही कहते थे परन्तु उसे निवारण करने के लिए भी नहीं कहते थे और निम्न प्रकार से विचार करते थे यथा—

, हे आत्मन्! जैसे तूने पूर्वभवमें कर्म किये थे वैसे भोग यह अनार्य्य मेरे शरीर के अतिरिक्त और किसी पदार्थका

✓ * एक २ प्रहरपर्यंत चारोंदिशाओंमें ध्यान करनेको भद्रप्रतिमा, दो २ प्रहर पर्यंत प्रत्येक दिशामें ध्यान करनेको महाभद्र प्रतिमा और चार २ प्रहरपर्यंत दिशाओंमें ध्यान करनेको सर्वतोभद्र प्रतिमा कहते हैं।

F, }

रूप भेषधारी नहीं देखा इसको ग्रामसे बाहिर निकाल दो, ऐसा नहो कि यह स्तेन (चोर) निकल आवे अथवा हमारा धन चुराले," इतना कहते ही सब एकत्रित पुरुष अनभिज्ञतासे भगवान्को मारने वा दुःख देने लगे तथा उन्होंने दण्ड वा मुष्टि प्रहारोंसे आपको बाहिर निकाल दिया।

इस समय विसर्जन किये हुये भगवान् अन्य ग्रामको विहार कर गये, वहा किसीनें पूछा कि "तू कौन है ?" तब आप चुपचाप ध्यान करके खड़े हो गये उसके बार २ पूछने पर भी आप मौन रहे, इससे वह मनुष्य कुपित होकर आप पर यष्टिप्रहार करने लगा तथा क्रोधवश होकर दुर्वाक्योंसे कष्ट देने लगा परन्त आप ऐसे दृढवृत्ति थे कि–देवसमूह भी आपको वृत्तिसे च्युतकरनेमें समर्थ न था. अतमें वह पुरुष श्रान्त होकर चला गया फिर आप अन्यत्र गमन कर गये, वहा आपको ठहरने के लिये कोई स्थान न मिला और ग्रामवासियोंने भूतप्रेत कह २ कर ग्राम में प्रवेश न करने दिया तब आप किसी निर्जन अटवीमें चले गये और वहा ही विश्राम कर लिया, फिर प्रातःकाल आपने विहार कर दिया, इसी प्रकार जहा कहीं भी आपको सूर्य्य अस्त हो गया चाहे वह निर्जन स्थान हो, अटवी हो, शून्य गृह हो, पितृवन (श्मशान) हो और विषम बन हो आपने वहा २ रात्रि विश्राम लिया किन्तु अपनी दृढ प्रतिज्ञासे मुंह नहीं मोड़ा।

*आपके पास चीरमात्र भी वस्त्र न था तब भी आप शीतकालमें जब कि शीतल पवनका वेग असह्य होता है, शरद् ऋतुके होनेमे दातसे दात बजता है ऐसी ऋतुमें आप वनमें खडे होकर, दोनो भुजाओंको फैलाकर ध्यान करते थे और समस्त रात्रि इसी दशामें सम्पूर्ण कर देते थे।

ग्रीष्म ऋतुमें आप प्रचण्डसे प्रचण्ड धूपमें भी †पद्मासन की रीति पर बैठकर सारा दिन व्यतीत कर देते थे, न उष्णताकी ओर लक्ष है और न धामकी ओर ध्यान किन्तु आप तो अपने काम से काम रखते थे।

जब कोई आपसे अत्यन्त आग्रहसे पूछता था कि-आप कौन हैं? तो आप "मै मुनिहूं" (भिक्षुहू) केवल इतना ही उच्चारण करके मौन हो जाते थे।

इस प्रकार भगवान् महावीरजी निरतर विहारकरने लगे एकदा जब कि आषाढ मास का एक पक्ष अतिक्रात हो चुका था आप वर्द्धमान ग्राम (अस्थिग्राम) में पधारे और चतुर्मास स्थिति का समय निकट आने के कारण और विहार अनवसर समझकर वहापर ही चतुर्मास करनेका निश्चय किया, ऐसा निश्चय करके आप ग्राम में गये और वहा चतुर्मास करनेके लिये स्थान पूछा. ग्रामवासियोंने आपको

---

* भगवान् वस्त्र नहीं पहनते हैं परन्तु वह वस्त्र पहरे हुये मनुष्यके समान दीखते हैं क्योंकि यह उनकी एक अतिशय है।

† अज काल भी बहुत जैन मुनि ऐसे हैं जो इस प्रकार ग्रीष्म ऋतुमें तपस्या करते हैं।

स्थान तो क्या देना था परन्तु आपको बहुत कष्ट देना प्रारम्भ किया और आपको ग्रामसे भी बाह्य कर दिया, फिर आप वहासे चलकर ग्रामके बाहर उद्यानके देवालयमें आज्ञा लेकर ठहर गये तथा प्रथम चतुर्मास अस्थि ग्राममें कर दिया, साथ में निम्न प्रकारसे प्रतिज्ञा कर ली कि–मै एक मास पर्यन्त अन्न पान शयनादिका त्याग करता हू इस समयके बीच यदि कोई उपसर्ग होगा तो मैं उसको सम प्रणामोंसे सहन करुगा ऐसे कहकर आपने ध्यान कर लिया. ध्याना-वस्थामें इसी मदिरवासी देवने परीक्षाके लिये तथा प्रतिज्ञा वा धर्म भग करनेके लिये आपको अनेक दुःख दिये परन्तु वह देव आपकी प्रतिज्ञा भग करने में किसी प्रकारसे भी समर्थ न हुआ, जब आपके ध्यानका समय पूर्ण हो गया तब आपने ग्राममें जाकर निर्दोष भिक्षा ग्रहण करके अन्न पान किया और फिर वहा ही अनुक्रम पूर्वक चतुर्मास सम्पूर्ण किया।

अनतर आप अन्यत्र विहार करते हुये मोराक सन्निवेशमें पहुचे वहा पर आपको अनेक उपसर्ग होते रहे परन्तु आपने उनको समतापूर्वक सहन किया।

इसके उपरान्त आप कउल तापसाश्रम में पधारे, उस आश्रमके समीप एक सर्प रहता था जिसे लोग चडकोसिया कहा करते थे उस सर्पके नेत्रो में ऐसी उग्र विष भरी हुई थी कि वह जिस पुरुष की ओर एक वार भी दृष्टि करता था वह ही एक क्षण में भस्म हो जाता था इस लिये दुःखित

होकर तपस्वियोंने वह आश्रम और पथिकोने वह मार्ग छोड रक्खा था जब आप (भगवान्) उस मार्ग पर चलने लगे तब लोगोंने पूर्वोक्त सर्पका सर्व वृत्तात सुनाकर उस मार्गपर जानेसे रोका परन्तु आप तो वडे वली थे वज्रऋषभ नाराच सहननके धारक थे इस लिये आपने यथोचित द्रव्य, क्षेत्र-काल भाव देखकर, तथा कर्मोंके क्षय करने के लिये अथवा चडकोसिया नामक सर्पको बोध देने के लिये उन पुरुषोंका कथन स्वीकार न किया और उसी मार्गपर चल पडे जहा उस सर्पकी विवर थी वहा पहुचकर उसके ऊपर आप ध्याना-रूढ हो गये, कुछ समयके पश्चात् वह सर्प बिलसे निकला और उसने भगवान् को देखकर फुकार शब्द किया तथा उनके चरणोंपर डक मारा उस हलाहल ने रुधिर निकाल नेके अतिरिक्त और कुछ कष्ट न पहुचाया।

उस समय चडकोसिया अपने आक्रमणको असफल देख-कर परम रोष में भरगया तब श्री ज्ञात पुत्रजीने उसे बोध दिया और उससे जीवहत्या छुडा दी. सत्य है—

पूर्ण अहिंसक का वचन किसपर असर नही करता अर्थात् पूर्ण दयालुका वचन बडा प्राभाविक वा शक्तियुक्त होता है वह सब पर अपना प्रभाव डालता है क्योंकि महा हिंसक का मन भी दयामय कर देता है यथा–

अहिंसाया प्रतिष्ठौ तत्सन्निधौ वैरत्यागः।

अर्थात् जो दयामें प्रतिष्ठित है उनके पास रहनेवाले हिंसक जीव भी दयायुक्त हो जाते है। सो इसके पीछे अनुक्रमसे

भगवान् विहार करके "श्वेताम्बिका" नगरीमें पधारे तथा उसके बाहर उद्यानमें विराजमान होगये, तब उस नगरके नरेश प्रदेशी राजा जी जो श्रावकधर्मके पालक और परम धर्मात्मा थे भगवान्के दर्शनार्थ आये जिस्से समस्त नगर में आपकी महिमा विस्तृत हो गई।

पुनः विहार करते हुये आप सुरभिपुरसे होकर राजगृही नगरीके नालंदापाडा में पधारे और द्वितीय चतुर्मास आपने वहां ही कर दिया।

वहां आपको *गोशाल मङ्खलिपुत्र जो स्वय ही अन्यमतका साधु हो गया था, मिला।

उसने आपकी विस्तीर्ण तथा महान् श्लाघा होती देखकर ईर्षाके वश होकर आपको बहुत कष्ट दिये।

आपकी यश वा कीर्ति विनाश करनेके लिये गोशालाने तन मन देकर अनेक उपाय किये, स्वय कष्ट सहन करने भी स्वीकार किये परन्तु फिर भी वह इस कार्य्यमें सफलता प्राप्त न कर सका।

यथोक्तम्—

मलोत्सर्गं गजेन्द्रस्य मूर्ध्नि काकः करोति चेत्।
कुलानुरूप तत्तस्य यो गजो गज एव सः ॥सुगम॥

आप क्षमाके समुद्र और शांति की मूर्ति थे, कोई आपको दुःख देवे या सुख, आपकी निन्दा करे या स्तुति, आप

* इसका पूर्ण स्वरूप श्रीमद्भगवती सूत्रके पञ्चदशवें (१५ वें) शतक में देखना चाहिये।

इसमें सम भाव रखते थे सो आपने द्वितीय चतुर्मास राजगृही में ही सम्पूर्ण किया।

सो चतुर्माम के पश्चात् अन्य देशोंमें विचरते हुये चतुर्मास समयके निकट चम्पा नगरीमें पधारे तथा तृतीय चतुर्मास वहीं कर दिया, और दो माम पर्यन्त कायोत्मर्ग कर दिया, यहा जो २ उपसर्ग भगवानको हुये वह मव शांति प्रणामोंसे अर्हन् श्रीवीर प्रभुने सहन किये।

फिर चार मासका ममय पूर्ण करके निरंतर विचरते हुए पीछे चम्पापुरमें विराजमान हुए और चार मासका कायोत्सर्ग करके वहीं चतुर्थ चतुर्मास किया। क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण, कर्कश शय्या, जलमल और घाम आदि अनेक परिषहोंको सम्यक् प्रकारसे सहन किया जब चतुर्मास सम्पूर्ण हो गया तब आपने चम्पावासी अभिनव सेठके घरमें पारणा किया. पुनः आप कयगल देशमें विचरने लगे, वहा से आगे लाट देशमें चले गये, इस प्रकार भ्रमण करते २ आप भद्रिका नगरीमें पधारे तथा पचवॉ और छट्ठा चतुर्मास इस नगरीमें किया पहिलेकी अपेक्षा आपको यहा पर स्वल्प उपसर्ग हुये।

फिर सप्तम चतुर्मास आपने आलम्बिका नगरीमें किया, यहा आपको शीतका अत्यंत घोर परिषह सहन करना पडा इसके पीछे अष्टम चतुर्मास राजगृहीमें, नवम चतुर्मास अनार्य्य देशमें किया यहां पर तो उपसर्ग परिषह, दुःख वा कष्टा[illegible]मा न रही।

अनार्य्योंने आपको बडी निर्दयतासे यष्टि वा मुष्टि प्रहारोंसे दुःख दिया, आपके परम सुकोमल शरीरको मृगयोत्सुक श्वानोंसे विदीर्ण करवाया, और घावोंपर लवणसे भी अधिक क्षारी वस्तु डालीं परन्तु आपका मन ऐसा अडोल था कि इन दुःसह्य कष्टोंसे रञ्चमात्र भी नहीं घबरायें, परन्तु आपने वहापर अपनी असीम धृष्टता वा सहनशीलताका परिचय दिया।

आप दयाभावमें भी परमोच्च थे।

एकदा आप कूर्म ग्राममें पधारे, जब कि गोशाला भी आपके सगमें था, वहा पर एक बडी लम्बी २ जटाओंवाला तपस्वी रहता था जिसे तपके प्रभावसे तेजुलेश्या शक्ति उत्पन्न हुई २ थी।

जब भगवान् उसके पाससे जारहे थे, तब गोशालाने उस तपस्वीका उपहास किया और उसे दुर्वचन बोले।

अपनी निन्दाको सुनकर तापसको झट क्रोध आगया, उसने गोशालाके सहारका दृढ निश्चय करके इसपर तेजुलेश्या शक्ति छोडी।

तब भगवान्‌ने दया करके शीतललेश्या छोडकर उसकी प्राण रक्षा की यदि आप ऐसा न करते तो गोशाला जलकर तुरन्त भस्मसात् हो जाता, परन्तु आप परम दयालु वा करुणासमुद्र थे अतः आपने कष्ट दाताकी भी दुःखमें सहायता करके उसके प्राण बचाये।

उत्तम पुरुषों का लक्षण भी यही है यथा—

निर्गुणेष्वपि सत्वेषु दया कुर्वन्ति साधवः।
न संहरते ज्योत्स्नां चन्द्रश्चाण्डालवेश्मनि ॥

पुनः भगवान् वीर प्रभु विहार करते हुये श्रावस्ती नगरीमें आये तथा दशवा चतुर्मास यहां ही कर दिया, चतुर्मासके पश्चात् एकदा भगवान् म्लेन्छ देशमें चले गये, वहा आपको ग्राम शार्दूलोंके बडे भयानक दुःख सहन करने पडे, वहा आपने दृढ भूमि (अनार्यधरती) के पेडाल उद्यानमें जाकर अष्टम भक्त करके कायोत्सर्ग कर दिया, देवकृत उपसर्ग भी आपने सहन किये. निरंतर दश मास पर्यन्त आपको वहा कष्ट पर कष्ट होता रहा, किन्तु आप अपनी दृढ क्रियाओंमें दृढ रहे और इन उपसर्गोंसे चलायमान नहीं हुये।

फिर आपने एकादशवा चतुर्मास वेशाला नगरीमें किया, इसके पश्चात् आप कौशम्बी नगरीमें गये और वहां पोषवदी एकमको आपने अभिग्रह किया यथा—

पृथिवी नाथस्य सुता भुजिषु चरितां जंजीरतां मुण्डितां
क्षुति क्षमा रुदति विधाय पदयोरन्तर्गतां देहली।
कुल्मापानुप्रहरद्वयव्युपरमे सूर्यस्य कोणे स्थिता
सुदध्यात्पार्णक तदा भगवते सोय महाभिग्रहे ॥

(१) द्रव्यमे उडदके बाकुले जो शुष्क किये हुये हों उनका भोजन लूंगा।

(२) क्षेत्रसे दाता का एक पग द्वारके भीतर हो और दूसरा द्वारके बाहिर ऐसे दातासे आहार लूंगा।

अनार्य्योंने आपको वडी निर्दयतासे यष्टि वा मुष्टि प्रहारोंसे दुःख दिया, आपके परम सुकोमल शरीरको मृगयोत्सुक श्वानोंसे विदीर्ण करवाया, और घावोंपर लवणसे भी अधिक क्षारी वस्तु डालीं परन्तु आपका मन ऐसा अडोल था कि इन दुःसह्य कष्टोंसे रञ्चमात्र भी नहीं घबराये, परन्तु आपने वहापर अपनी असीम धृष्टता वा सहनशीलताका परिचय दिया।

आप दयाभावमें भी परमोच्च थे।

एकदा आप कूर्म ग्राममें पधारे, जब कि गोशाला भी आपके सगमें था, वहा पर एक वडी लम्बी २ जटाओंवाला तपस्वी रहता था जिसे तपके प्रभावसे तेजुलेश्या शक्ति उत्पन्न हुई २ थी।

जब भगवान् उसके पाससे जारहे थे, तब गोशालाने उस तपस्वीका उपहास किया और उसे दुर्वचन बोले।

अपनी निन्दाको सुनकर तापसको झट क्रोध आगया, उसने गोशालाके सहारका दृढ निश्चय करके इसपर तेजुलेश्या शक्ति छोडी।

तब भगवान्ने दया करके शीतललेश्या छोडकर उसकी प्राण रक्षा की यदि आप ऐसा न करते तो गोशाला जलकर तुरन्त भस्मसात् हो जाता, परन्तु आप परम दयालु वा करुणासमुद्र थे अतः आपने कष्ट दाताकी भी दुःखमें सहायता करके उसके प्राण बचाये।

उत्तम पुरुषों का लक्षण भी यही है यथा—

निर्गुणेष्वपि सत्वेषु दयां कुर्वन्ति साधवः ।
न सहरते ज्योत्स्नां चन्द्रश्चाण्डालवेश्मनि ॥

पुनः भगवान् वीर प्रभु विहार करते हुये श्रावस्ती नगरीमें आये तथा दशवा चतुर्मास यहा ही कर दिया, चतुर्मासके पश्चात् एकदा भगवान् म्लेच्छ देशमें चले गये, वहा आपको ग्राम शार्दूलोके बडे भयानक दुःख सहन करने पडे, वहा आपने दृढ भूमि (अनार्य्यधरती) के पेडाल उद्यानमें जाकर अष्टम भक्त करके कायोत्सर्ग कर दिया, देवकृत उपसर्ग भी आपने सहन किये. निरंतर दश मास पर्यन्त आपको वहा कष्ट पर कष्ट होता रहा, किन्तु आप अपनी दृढ क्रियाओंमें दृढ रहे और इन उपसर्गोंसे चलायमान नहीं हुये ।

फिर आपने एकादशवा चतुर्मास वेशाला नगरीमें किया, इसके पश्चात् आप कौशम्बी नगरीमें गये और वहां पोषवदी एकमको आपने अभिग्रह किया यथा—

पृथिवी नाथस्य सुता भुजिषु चरितां जंजीरता मुण्डितां
क्षुति क्षमा रुदति विधाय पदयोरन्तर्गतां देहली ।
कुल्माषानुप्रहरद्वयव्युपरमे सूर्यस्य कोणे स्थिता
तुदद्यात्पार्णकं तदा भगवते सोयं महाभिग्रहे ॥

(१) द्रव्यसे उडदके बाकुले जो शुष्क किये हुये हों उनका भोजन लूगा ।

(२) क्षेत्रसे दाता का एक पग द्वारके भीतर हो और दूसरा ... ऐसे दातासे आहार लूगा ।

(३) कालमें मध्याह्नके समय आहार ग्रहण करूंगा ।

(४) भावसे तब लगा, कि देनेवाली राजाकी कन्या हो तथा दासीकी दशामें हो, शिरसे मुण्डित हो, तीन दिनके उपवासका पारणा करने लगी हो, रुदन करती हो, वा उसके पगोंमें जंजीर पडी हो और उसके आहार देनेके विचार भी हो ।

सो यदि पूर्वोक्त रीतिसे आहार मिलेगा तो लेलूंगा नहीं तो मैं अन्न पानी ग्रहण नहीं करूंगा ।

इस प्रकार अभिग्रह करके भगवान् कालक्षेपण करने लगे परन्तु उनकी प्रतिज्ञाके अनुसार कहीं भी आहार न मिला ।

उस कालमें एक चम्पापुर नामक नगर था जिसके दधिवाहन अधिपति थे उस राजाकी धारणी राणी थी और चन्दनबाला शीलशिरोमणि पुत्री थी तथा उसी कालमें कौशम्बी नगरी (जहा भगवानने अभिग्रह ग्रहण किया था) के अधिपति सन्तानीक महाराज थे, किसी कारण दधिवाहन वा सन्तानीक राजामें परस्पर विरोध हो गया ।

सो एकदा सन्तानीक राजा अपना कटक प्रस्तुत वा सज्जित करके सग्राम के लिये चम्पा नगरीमें आगया तब सग्राम होना प्रारम्भ हो गया, सहस्रों पुरुषोंका वध हुआ, रुधिर नदियों की आकृतिमें बहने लगा, अस्थियोंकी राशिया लग गई अतमें सन्तानीक राजाने जय प्राप्त करके नगर लूटनेकी आज्ञा देदी ।

तन एक सैनिक पुरुष राजभवनमें घुमकर राणी और उसकी कन्या चन्दननालाको बलात्कारसे उठाकर कौशम्बी नगरीमें ले आया, किन्तु राणीने किसी शस्त्रादिके प्रयोगसे अपनी घात करली जिसमे वह ससार त्याग कर परलोकवासिनी हुई।

पश्चात् सैनिक पुरुषने विचार किया कि-एकतो मर गई यदि मैने दूसरीको विषयादिकी आशा पर कुछ कहा तो ऐसा न हो कि यह भी प्राण छोड दे और मेरे हाथ कुछ भी न आवे।

यह विचार कर चन्दननालाको नाजारमें लेजाकर विक्रय करने लगा, पुण्ययोगसे वहां पर धन्ना नामक सेठ (जो बडा धर्मज्ञ वा सत्यवादी था) आगया, उसने चन्दननालाको मोल ले लिया, और उसे धर्मकी पुत्री ननाकर अपने घरमें ले आया।

सेठजी की भार्याका नाम मूला था जो अति क्लेशप्रिया वा कलहकारिणी थी सेठजीने उससे कहा कि-हे सेठानी! यह अनला बडी दुःखिया है मै इसे अपनी धर्मपुत्री बनाकर लाया हूं अतः तू भी इसे निजपुत्री समझकर इसकी रक्षा कर. यह कहकर सेठजी अपने व्यवहारमें लग गये।

इस प्रकार समय व्यतीत होने लगा किन्तु दुष्टा मूलाके मन में सदा दुष्टभाव रहते थे वह विचारती थी कि सेठजी इसे कन्या २ तो कहते है, स्यात् वह इसे अपनी [illegible]

[illegible] ा और प्रौढयौवना है

चन्दनबालाको मार दूं तो शंका जाती रहे. ऐसा विचार कर वह छिद्र देखने लगी।

एकदा किसी कार्य के लिये सेठ जी कहीं अन्य ग्राममें गये पश्चात् मूलाने सुअवसर जानकर क्रोधमें भरकर चन्दन बाला का शिर मुण्डा दिया और उसके पगों में जजीर डालकर वा कुत्सित वस्त्र पहनाकर, भूमिगृहमें (गुप्त घर या भोरामें) डालकर बाहरसे तालक (जन्द्रा) लगादिया और निर्भीक होकर दिवस निताने लगी।

पुनः वह राजकन्या भोरे में पड़ी हुई *पचपरमेष्ठी का जाप करती थी तथा अपने पापकर्मोंकी निन्दा करके अनित्य भावना विचारती थी।

इसी दशामें तीन दिन अतिक्रात हो गये तब सेठजी कार्य्य समाप्त करके स्वगृहमें आये और जब चन्दनबालाको कहीं नहीं देखा तो मूलासे पूछा, कि "चन्दनबाला कहा है"? वह बोली "मुझे क्या खबर, क्या वह मुझे पूछकर गई है" इतना कह कर वह क्रोधके वश होकर कहीं अन्यत्र चली गई सेठजीने अपने समीपवासियोंसे वृत्तात पूछा, तब एक वृद्धा स्त्रीने समस्त वृत्तात कह दिया।

ऐसा हाल सुनकर सेठजी अत्यन्त घबराये तथा त्वरित ही भोरे में जाकर ताला तोड दिया और अपनी पुत्रीको

---

* नमो अरिहताण, नमो सिद्धाण, नमो आयरियाण, नमो उवज्झायाण, नमो लोए सव्वसाहूण एसो पच नमुक्कारो सव्व पावपणाशणो मगलाणच सव्वेसि पढम हवइ मगल (यह पचपरमेष्ठीका जाप है जो सदा (है)।

ऐसी दुःखावस्थामें देखकर सेठजीके नेत्रोंसे उष्ण जल झरणे लगा।

चन्दनबालाको तीन दिनसे भूखी प्यासी जानकर उसे और कुछ विचार न हुआ उसने शीघ्रही उडद के बाकुले जो समीप ही पडे हुये थे और अश्वके निमित्त बनाये गये थे, चन्दन बालाके सन्मुख रखदिये और कहा कि-हे पुत्री! तू इनको खा, मैं अभी तेरे खानेके लिये मिष्टान्न तथा जंजीर काटनेके लिये लोहकारको लाता हूं यह कह कर वह चला गया।

तब चन्दनबाला द्वारमें बैठकर तथा एक पग अन्दर और एक पग बाहिर करके उड़द खाने लगी।

अभी खाने न पाई थी कि श्री श्रमण भगवान् महावीरजी भिक्षार्थ वहा आगये।

फिर चन्दनबाला भगवान्के दर्शन करके परम हर्षित होकर इस प्रकारसे बोली, हे स्वामिन्! मेरेसे यह उपस्थित शुद्ध वा निर्दोष आहार लीजिये।

इस प्रकारके वचन सुनकर भगवान्ने अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण किया तो निश्चय हुआ कि अभीतक मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण नहीं हुई ऐसा विचार कर तुरन्त लौट गये जब भगवान् आहारके विना ग्रहण किये चल पडे तब चन्दनबालाको बडी अशान्ति तथा व्याकुलता हुई और उसके यह अध्यव-साय हुये कि-मैं ऐसी निर्भागिनी हू जो ऐसे शुद्ध पात्र साधूको आहार न दे सकी, अपितु अपने पूर्वकृत पापोंका पश्चात्ताप करके अश्रुपात करने लगी।

उसकी ऐसी दशा देखकर और अपने अभिग्रहको पूर्ण हुआ जान वहा आकर आपने उससे आहार ले लिया यह प्रतिज्ञा पाच दिन न्यून षट् मासमें सम्पूर्ण हुई, अर्थात् भगवानको पाच दिन न्यून ६ मास पीछे यह उडद आहार मिला, जिससे आपने इस घोर अभिग्रहका पारणा किया।

इसके अनतर भगवानने द्वादशवा चतुर्मास चम्पा नगरी में किया। चतुर्मास काल सम्पूर्ण होनेपर वीर प्रभु अन्यत्र विहार कर गये, तथा अनुक्रमसे विचरते हुये एकदा जडग्राम के बाह्यस्थ उद्यान में पधारे और वहा पर ही त्रयोदशवा चतुर्मास करके ठहर गये। तब आपको देवों मनुष्योंने घोर उपसर्ग दिये जो कि परम दुःसाह्य वा भयकर थे आपने उन्हें बडी धीरतासे शान्तिपूर्वक सहन किया। इस प्रकारसे विचरते हुये श्री श्रमण भगवान् महावीरजीको जो २ उपसर्ग वा

---

* ऐसा शुद्ध आहार ऐसे शुद्ध पात्रमे देनसे वहा देवोंने साढे बारह कोटि सुवर्णोंकी दिव्य वर्षा की और चन्दनबालाकी लोहशृगला (बेडीया) काट दी तथा उसके शरीरको शृगारयुक्त कर दिया पश्चात् राजाने उसके पास आकर कहा, कि–हे कन्ये! तू धनको ग्रहण कर और मैं तेरा विवाह कर देता हू परन्तु चन्दनबालाने यह कथन स्वीकार न किया तथा उत्तर मे राजासे कहा कि–"महाराज मैं विवाह न कराऊगा, परन्तु जबतक भगवानको केवल ज्ञान न उत्पन्न होगा तबतक मैं ससार मे श्राविकाकी वृत्तिमे रहूगी, पश्चात् दीक्षा ग्रहण करूगी"।

१ आपको एक सगम नामक देवने षट्मासपर्यन्त घोर उपसर्ग किया परंतु आपने बडाही शांतिपूर्वक उसको भी सहन किया अतमे वह देव श्रान्त होकर चला गया।

परिषह देव, मनुष्य तथा तिर्यंच सम्बन्धि हुये वह समस्त उपसर्ग आपने अव्याकुल हृदयमे, अविक्षिप्त चित्तमे तथा अदीन मनसे तीनों योगोंद्वारा सम्यक् प्रकारसे क्षमण किये वा हितार्थ सहन किये, किन्तु कदापि अधीरता वा कायरता नहीं की, प्रत्येक परिषहके सन्मुख आप ऐसे होते थे जैसे मदोन्मत्त हस्ती शत्रू की सेनामें निर्भीक होकर जाता है।

इस विधिसे विहार करते हुये आपको १२ वर्ष और १ दिन न्यून ६ मास व्यतीत हो गये थे।

एकदा आप जृंभि नामक ग्रामके बाहिर ऋजुपालिका नदीके उत्तर कूलपर श्यामाक नामक गृहपतिके करपणके समीपस्थ वैयावृत्त्य चैत्य (उद्यान) की ईशान कूणमें शाल-वृक्षसे न अति दूर और न अति निकट स्थानपर विराजमान हो गये और कायोत्सर्ग करने लग गये।

रात्रिके समय आपको अकस्मात् निद्रा आगई जिससे आप शयन कर गये।

उस समय आपको दश स्वप्न आये जिनका विवर्ण सूत्र श्रीभगवती, शत्तक सोहलवां उदेश ६ में और सूत्र श्रीमद् स्थानागजीके दशवें स्थानमें किया गया है।

यथा—

समणे भगव महावीरे छउमत्थ कालियाए अतिम राइयासि इमे दस महासुविणे पासि-त्ताणं पडिबुद्धे तं जहा–एगं चण महं घोररूव

दित्तधर तालपिसाय सुमिणे परजियं पासित्ताणं पडिवुद्धे १ एग चणं महं सुक्किल परकगं पुस कोइल सुमिणे पासित्ताणं पडिवुद्धे २ एग चण मह चित्तविचित्त पक्खग पुंस कोइलगं सुमिणे पासित्ताणं पडिवुद्धे ३ एग चणं महं दामदुग सव्व रयणाय सुमिणे पासित्ताणं पडिवुद्धे ४ एग चणं मह सेयगोवग्ग सुमिणे पासित्ताणं पडिवुद्धे ५ एग चण मह पउमसर सव्व उसमता कुसुमियं सुमिणे पासित्ताण पडिवुद्धे ६ एग चण मह सागर उम्मीवीया सहस्सकलिय भुयाहितिण सुमिणे पासित्ताणं पडिवुद्धे ७ एगं चण महं दिणयर तेयसा जलतं सुमिणे पासित्ताण पडिवुद्धे ८ एग चण मह हरि वेरूलियवन्ना भेणं नियगेण अंतेण माणुसुत्तर पव्वउ सव्वउसमता आवेढिय परिवेढिय सुमिणे पासित्ताण पडिवुद्धे ९ एग चण मह मदरे पव्वण्ण मदर चूलिया उवरि सीहासण वरगयं अप्पाण सुमिणे पासित्ताणं पडिवुद्धे ॥ १० ॥ जण समणे भगव महावीरे एग मह घोररूवं दित्तधर तालपिसाय सुमिणे पाराजिय वा पासित्ताण पडिवुद्धे तण समणेण भगवया महावीरेण मोहणिजे कम्मे मूलओ उग्घातित्ते १जण समणे भगव महावीरे एग महं सुक्किल

जाव पडिवुद्धे तण समणे भगव महावीरे सुक्कज्झाणोवगए विहरति २ जणं समणे भगवं महावीरे एग महं चित्तविचित्त जाव पडिवुद्धे तण समणे भगव महावीरे विचित्त ससमय पर समय दुवालसंग गणिपडिगं आघवेति पन्नवेति परूवेति दंसेति निदंसेति उवदंसेति तंजहा आयारं सूयगड जाव दिट्ठिवाय ३ जण समणे भगवं महावीरे एग मह दामदुगं सव्वरयणामयं सुमिणे पासित्ताणं पडिवुद्धे तणं समणे भगवं महावीरे दुविहे धम्मे पन्नवेति तंजहा आगार धम्म वा अणगार धम्मं वा ४ जण समणे भगवं महावीरे एगं महं सेयगोवग्गं जाव पडिवुद्धे तणं समणे भगवं महावीरे चाउवण्णाईणे समणसंघे पन्नत्ता तजहा समणाउ समणीउ सावयाउ सावियाउ ५ जणं समणे भगव महावीरे एग महं पउमसरं जाव पडिवुद्धे तण समणे भगव महावीरे चउविहे देव पन्नवेत्ति तजहा भवणवासी वाणमंतर जोतिसियए वेमाणिए ६ जणं समणे भगवं महावीरे एग महं सागर जाव पडिवुद्धे तण समणेणं भगवया महावीरेण अणादीए अणवदग्गे जाव ससार कंतारे तिणे ७ जण समणे भगवं महावीरे एग महं दिणयर जाव पडिवुद्धे तण समणस्स भगवओ

महावीरस्स अणते अणुत्तरे जाव केवलवर नाणदसणे समुप्पन्ने ८ जण समणे भगव महावीरे एग मह हरिय वेरुलिय जाव पडिबुद्धे तण समणस्स भगवओ महावीरस्स उराली कित्तिवन्न सद सिलोया सदेव मणुयासुर लोगे परिभुवति इति खलु समणे भगवं महावीरे इति खलु ९ जण समणे भगव महावीरे मदिरे पव्वए मदरे चूलियाए जाव पडिबुद्धे तण समणे भगव महावीरे सदेव मणुया सुराए परिसाय मज्झगए केवलि पन्नत्त धम्म आघवेति जाव उवदसेति ॥ १० ॥ इति ॥

अर्थ—श्री श्रमण भगवान् महावीरजी छद्मस्थ कालकी अन्तिम रात्रिके अवसानके प्रहरमें यह दश महास्वप्न देखकर जागृत हुये यथा—एक महा भयकर तथा विकराल रूप धारी ताल पिशाचको स्वप्नमें मैंने पराजय कर दिया. यह देखकर प्रतिबुद्ध हुये १ एक महा शुक्ल पक्षोंवाले पुरुष कोकिलको स्वप्न में देखा २ एक महा चित्रविचित्र परोंवाले पुरुष कोकिलको स्वप्न में देखा ३ प्रधान रत्नोंसे निर्मित परम पवित्र मालायुग्मको स्वप्न में देखा ४ महाश्वेत वर्णीय गोवर्ग को स्वप्न में देखा ५ एक महापद्मसरोवरको देखा जिसमें षट् ऋतुओंके कुसुम विकसित हो रहे थे जो परम रमणीय तथा चित्ताकर्षक थे, सातवें स्वप्न में भगवान्ने देखा कि एक महाविशाल वा अथाह समुद्र है जिसमें सहस्रों लक्षों

उत्कट लहरें आरही हें, ऐसे रत्नाकरको मैं भुजोसे तर गया ७ आठवें सहस्र किरणों करके देदीप्यमान एक महासूर्य्यको स्वप्न में देखा ८ नवमें स्वप्न में मानुषोत्तर पर्वतको हरितवर्णीय वैडूर्य्य रत्नोंसे सर्व सीमतमें परिवेष्टित देखा ९ दसवें–मेरुगिरिकी सर्वोच्च चूलिका पर एक अतीव प्रधान सिंहासन है सो ऐसे सिहासन पर मैं बैठा हू यह स्वप्न देखा ॥ १० ॥

प्रथम स्वप्न में जो भगवानने देखा कि मैंने पिशाचको पराजय कर दिया है उसका फल यह हुआ कि ससारभर में प्राणियोंको दुःखित करने वा एक गतिसे दुसरी गति में भटकानेवाला, और अनेक जन्मो में रुलानेवाला जो मोहनीय कर्म है, जिसके प्रभावसे आत्मा अपने निजगुणकी परीक्षा में असमर्थ हो जाता है तथा मोक्षमार्गसे पराङ्मुख रहता है, ऐसे मोहनीय कर्मपर भगवानने विजय पाई अर्थात् इसका नाश किया।

द्वितीय–जो आपने स्वप्न में शुक्ल पक्षोंवाले पुरुष कोकिल को देखा उसका फल आपको यह हुआ कि आपको परम शुक्ल ध्यानकी प्राप्ति हुई जिसमे आर्त वा रौद्रध्यानका सदा के लिये तिरस्कार हुआ।

तृतीय–जो आपने चित्रविचित्र पक्षोंवाले पुरुष कोकिल को स्वप्न में देखा उसका फल आपको यह हुआ कि–आपने चित्रविचित्र गूढ रहस्योंसे पूरित यथार्थ सिद्धान्तको वर्णन किया अर्थात् स्वसमय वा परसमयरूप आचारांग, सूत्रकृताग

समय चन्द्रमा उत्तराफाल्गुणी नक्षत्र में आया हुआ था) अपराण्ह काल में उत्तर पूर्व दिशाभाग में (ईशान कोन में) जब कि भगवान् सूर्य की आतापना ले रहे थे तथा निर्जल छठ भक्त (बेले) के साथ ऊर्ध्व जानु अधोशिर करके स्थित थे और धर्मध्यानोपगत वा ध्यानरूपी गृहमें प्रवेश करके तथा शुक्लध्यान के अन्तर वर्तमान होते हुओंको निरावर्ण, सम्पूर्ण, प्रतिपूर्ण, निर्विध्यात, अनत, अनुत्तर केवल ज्ञान वा केवल दर्शन उत्पन्न हुआ।

तदनतर स्वर्ग में इन्द्रों के आसन कम्पायमान हुये, इन्द्रों ने अवधि ज्ञान में उपयोग देकर देखा कि–हमारे आसन क्यों चलायमान हुये हैं, तब प्रतीत हुआ कि भगवान् श्री वीर प्रभुको केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ है अनादि कालसे इन्द्रोंका यह जीत व्यवहार है कि वह तीर्थकर महाराजके जन्मोत्सव, दीक्षोत्सव, केवलज्ञानउत्पन्नोत्सव तथा निर्वाणोत्सव इन चार कारणोंसे मर्त्यलोक में जाते हैं। इस लिये हमें योग्य है कि–हम वहा जाकर भगवान्को केवल ज्ञान उत्पन्न होनेकी महिमा करें यह विचार कर

नोट–इसी प्रकार हेमचन्द्राचार्यविरचित "श्रीत्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र" ग्रन्थके १० वें पर्वके ५ व सर्ग में लिखा है तथाहि—

जगन्नाथोऽथ तनजुपाल्किोत्तर रोधसि। श्यामाकनाम्नो गृहिण क्षेत्रे शालतरो तले ॥ १ ॥ अव्यक्तचैत्यस्यासने षष्ठे नोत्कटिकासनी। मुहूर्त विजये स्वामी तस्थावातापनापर ॥ २ ॥ युग्मम्। शुक्लध्यानान्तरस्थस्य क्षपकश्रेणिवर्तिन। स्वामिनो घातिकर्माणि तुत्रुटुर्जीर्णरज्जुवत् ॥ ३ ॥ वैशाखश्वेतदशम्यां चन्द्रे हस्तोत्तरगते। यामे चतुर्थेऽह्नो मतुरुदपद्यत केवलम् ॥ ४ ॥ इति ॥

समस्त इन्द्र देवसमूहके साथ परिवृत्त होते हुए अत्यन्त हर्ष-पूर्वक भगवानके पास आये और वन्दना नमस्कार की फिर एक योजन प्रमाण अनुपम समोसरण रचा।

फिर भगवान् वर्द्धमान स्वामीने वहा पर विराजमान होकर धर्मोपदेश दिया परन्तु देव अव्रति होते है अर्थात् उनके देवभव में व्रत उदय नहीं होता इस कारण किसीने भी व्रत तथा प्रत्याख्यान ग्रहण नहीं किया।

पुनः भगवानने वहा से विहार कर दिया और अनुक्रमसे अपापापुरी में पधारे।

तब सुरोंने उस नगरीके समीपतरवर्ती एक सुन्दर उद्यान में बडा मनोहर रमणीय समोसरण रचा।

तब भगवान् देववृन्दसे परिवृत हुए २ पूर्व दिशाकी ओरसे प्रविष्ट हुये और एक विचित्र महासिंहासन पर बैठ गये. उस समय चारो ओरसे जयजयकारके शब्द सुनाई देते थे. देव हर्षित होकर भगवानकी स्तुति कर रहे थे तब त्रिजगद्गुरु श्री भगवान् महावीरजी अपनी वाणीरूपी पीयूषधारासे अमृतरूपी वर्षा करने लगे तथा आपने प्रतिपादन किया।

✓ हे आर्यो! यह ससार समुद्रके समान दारुण तथा अप-रिमित है। कर्म इसके मूल कारण है जैसे वृक्ष बीजसे उत्पन्न होता है इसी प्रकार जो आत्मा इस संसारसागरमे परिभ्रमण करता है उसका मूल कारण कर्म है अर्थात् कर्मोंके आधीन होकर आत्मा इस भयकर ससारार्णव में पर्यटन करता है।

जीव कर्म करने में सदा स्वतन्त्र है अतः जब जीव विवेक शून्यहोकर पापकर्मों में आसक्त हो जाता है तब वह कूप खनक की नाई पापोंसे बोझल होकर अधोसे अधो गतिको प्राप्त करता है अर्थात् जैसे कुआ खोदनेवाला पुरुष ज्यों २ कुआ बनाता है त्यों २ पृथ्वीमें नीचेसे नीचे चला जाता है इसी प्रकार पापोंमें गुरु होकर जीव भी सबमें अधोगति (नरक) में चला जाता है और यही आत्मा निजसुकृतके द्वारा उच्चसे उच्च गतिको उपलब्ध कर लेता है तथा श्रेष्ठ कर्मोंसे इस प्रकार ऊपरसे ऊपर गमन करता है जैसे प्रासादकारक ज्यों २ प्रासाद बनाता जाता है त्यों २ ऊंचेसे ऊंचे होता जाता है इससे सिद्ध हुआ कि—आत्मा जैसे श्रेष्ठ अथवा निकृष्ट कर्म करता है तदनुसार फलको प्राप्त करता है। "सुचिन्ना कम्मा सुचिन्ना फला भवंति दुचिन्ना कम्मा दुचिन्ना फला भवंति" अर्थात् सुष्ट कर्म करनेसे सुख और निकृष्ट (पापादि) कर्मसे दुःख उपलब्ध होता है अतः समस्त प्राणियोंको अपने समान जानकर किसीको दुःख न देना चाहिये क्योंकि सर्व जीव सुखाभिलाषी हैं दुःख भोगना कोई भी नहीं चाहता. इस लिये कर्म बन्धनका कारणरूप प्राणातिपात पाप त्यागना चाहिये. मृषावादको छोडकर सुनृत भाषण करना चाहिये तथा किसीका धन हरण करना (चोरी करना) कदापि योग्य नहीं, क्योंकि गृहस्थाश्रममें गृहस्थियोंके लिये धन प्राणोंके सदृश है इस लिये किसीका धन हरण करनेका पाप उसके प्राण हरणसे न्यून नहीं है,

इसी प्रकार बहुत जीवोका मर्दक मैथुनरूप महापाप भी त्यागना चाहिये।

ब्रह्मचर्य्यव्रत सर्व व्रतोंमें प्रधान और मोक्षका कारण है इसको धारण करना चाहिये। इससे उभय लोकमें सुख प्राप्त होता है। ब्रह्मचारीको देखते ही मनुष्य नमस्कार करते है। कर्मरूपी मलके दूर करनेके लिये भी ब्रह्मचर्य्यव्रत धारण करना परमावश्यक है इसी प्रकार परिग्रहमें मूर्छित न होना चाहिये इसमें मुग्ध होनेसे जीव अनेक कष्टोंको सहन करता है अतः हे आर्य पुरुषो! प्राणातिपात्त आदि पापोंको त्याग कर अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य्य, अपरिग्रहादि धर्मोंको धारण करो, यदि तुम सर्वथा प्रकारसे साधुवृत्तिको धारण नहीं कर सक्ते तो श्रावकवृत्तिको ही ग्रहण करो।

स्मरण रखो, धर्मके विना तुम्हारा कोई साथी नहीं होगा। धर्मसे इहलौकिक सुख अर्थात् प्रशंसा प्रतिष्ठादि और पारलौकिक सुख अर्थात् स्वर्गमोक्षादि की प्राप्ति होती है। जीव कर्म करनेमें सदा स्वतन्त्र है किन्तु जब कर्म कर चुकता है और उसका बंध निकाचित हो जाता है तब वह पराधीन अर्थात् उन्हीं कर्मोंके वशीभूत हो जाता है, किन्तु यावत् काल पर्यन्त कर्मक्षय नहीं होते तावत् काल पर्यन्त जीव मोक्ष को उपलब्ध नहीं कर सक्ता इसलिये प्रत्येक गृहस्थको द्वादश नियम ग्रहण करने चाहिये यथा—

थूलाउ पाणाइवायाउ वेरमणं।

स्थूल जीवहिंसा से निवृत्तिरूप प्रथम अनुव्रत है, क्योंकि

जीव कर्म करने में सदा स्वतंत्र है अतः जब जीव विवेक शून्यहोकर पापकर्मों में आसक्त हो जाता है तब वह कूप खनक की नाईं पापोंसे बोझल होकर अधोमे अधो गतिको प्राप्त करता है अर्थात् जैसे कुआं खोदनेवाला पुरुष ज्यों २ कुआ बनाता है त्यों २ पृथ्वीमें नीचेसे नीचे चला जाता है इसी प्रकार पापोंसे गुरु होकर जीव भी सबसे अधोगति (नरक) में चला जाता है और यही आत्मा निजसुकृतके द्वारा उच्चसे उच्च गतिको उपलब्ध कर लेता है तथा श्रेष्ठ कर्मोंसे इस प्रकार ऊपरसे ऊपर गमन करता है जैसे प्रासादकारक ज्यों २ प्रासाद बनाता जाता है त्यों २ ऊंचेसे ऊंचे होता जाता है इससे सिद्ध हुआ कि—आत्मा जैसे श्रेष्ठ अथवा निकृष्ट कर्म करता है तदनुसार फलको प्राप्त करता है। "सुचिन्ना कम्मा सुचिन्ना फला भवति दुचिन्ना कम्मा दुचिन्ना फला भवति" अर्थात् सुष्ट कर्म करनेसे सुख और निकृष्ट (पापादि) कर्मसे दुःख उपलब्ध होता है अतः समस्त प्राणियोंको अपने समान जानकर किसीको दुःख न देना चाहिये क्योंकि सर्व जीव सुखाभिलाषी हैं दुःख भोगना कोई भी नहीं चाहता. इस लिये कर्म बन्धनका कारणरूप प्राणातिपात पाप त्यागना चाहिये मृषावादको छोडकर सुनृत भाषण करना चाहिये तथा किसीका धन हरण करना (चोरी करना) कदापि योग्य नहीं, क्योंकि गृहस्थाश्रममें गृहस्थियोंके लिये धन प्राणोंके सदृश है इस लिये किसीका धन हरण करनेका पाप उसके प्राण हरणमे न्यून नहीं है,

सर्वथा जीवहिंसा की तो गृहस्थी निवृत्ति नहीं कर सक्ते, इसलिये प्रत्येक पुरुषको स्थल जीवहिंसा का त्याग करना चाहिये अर्थात् जान बूझकर किसी निरापराधि जीवका वध न करना चाहिये। इस नियमसे न्यायमार्ग की अतीव प्रवृत्ति होती है। इस व्रतको राजाओंसे लेकर सामान्य जीवों पर्यन्त सर्व आत्मायें सुखपूर्वक धारण कर सक्ती हैं। राजाओंके लिये सअपराधि जीवों को दण्ड देते समय दयाका पृथक् करना अयोग्य है क्योंकि ऐसा करने से नियममें दोष लगता है, इसलिये जिस प्रकार उक्त नियम में दोष न लगे उस प्रकारसे ही ग्रहण करना चाहिये अर्थात् दडके पश्चात् राजा की ओर से नगरमें उद्घोषणा करवा देनी चाहिये यथा—"हे मनुष्यो! इस व्यक्तिको अमुक दड दिया जाता है इसमें महाराज (राजा) का कोई भी दोष नहीं है, अपितु जिसप्रकार इसने पापकर्म किया है उसीप्रकार इसको यह दड दिया जाता है"। इस कथनसे भी न्यायधर्म की पुष्टि होती है।

नियमधारी को इस प्रथम व्रत की शुद्धिके लिये पांच अतिचार भी वर्जने योग्य हैं जोकि प्रथम व्रतमें दोषरूप हैं अर्थात् प्रथम व्रतको कलंकित करनेवाले हैं यथा—

बंधे १ वहे २ छविच्छेदे ३ अइभारे ४ भत्तपाणवुच्छेए ५

अर्थः—क्रोधके वश होकर कठिन बंधनोंसे जीवोंको बांधना १ निर्दयताके साथ उनको मारना २ अङ्गोपाङ्गको

छेदन करना ३ पशुकी शक्तिको न देखकर अप्रमाण भारका लादना ४ अन्नपानीका व्यवच्छेद करना अर्थात् अन्नपानी न देना ५ यह पाच अतिचार अवश्यही व्रतधारीको त्यागने चाहियें क्योंकि इनके त्यागसे ही प्रथम व्रत की शुद्धि हो सक्ती है।

द्वितीय अनुव्रत।

थूलाउ मुसावायाउ वेरमण।

स्थूल मृषावाद निवृत्तिरूप द्वितीय अनुव्रत है। कन्या भूम्यादि और गवादि पशुओंके लिये अथवा स्थापनमृषा कूटसाक्षी व्यापार तथा अन्य २ कारणोंमें स्थूल असत्य भाषण करनेसे प्रतीति का नाश हो जाता है, राज्यसे दंड की प्राप्ति होती है और आत्मा पापसे कलंकित हो जाती है इसलिये असत्य भाषी नहीं होना चाहिये, अपितु यह न समझ लीजिये कि स्थूल ही मृषावाद छोडने योग्य है किन्तु सूक्ष्म की आज्ञा है। हे पुरुषो! सूक्ष्म की आज्ञा नही है किन्तु दोष न लग जाने पर स्थूल शब्द ग्रहण किया गया है अपितु असत्य सर्वथा ही त्यागनीय है और जीव को सदैवकाल दुःखित करनेवाला है, संसारचक्र में परिवर्त्तन करानेवाला सुकर्म्मोंका नाशक है। इसलिये आत्मारक्षक द्वितीय अनुव्रतकी पुष्टि अर्थात् शुद्धिके लिये पाच अतिचार वर्जने योग्य है यथा—

१ रहसाभक्खाणे २
३ मोसोवएसे ४ कूड

अर्थः—विना विचार किये अकस्मात् भाषण तथा दोषारोपण करना १ रहस अर्थात् गुप्तवार्ताओंको प्रगट करना २ स्वभार्याका मन्त्र अर्थात् भेद प्रकाश करना ३ मिथ्या उपदेश देना ४ असत्य और खोटे लेख लिखना ५ इन पाच ही अतिचारों को त्याग कर द्वितीय व्रत शुद्ध ग्रहण करना चाहिये।

तृतीय अनुव्रत।

थूलाउ अदिन्नादाणाओ वेरमण।

तृतीय अनुव्रत स्थूल चोरी का परित्यागरूप है जैसेकि-ताला तोडना, गाठ छेदन करना, भित्ति तोडना, मार्गोमें लूटना, डाके मारना इत्यादि। यह निदनीय कर्म अधोगति के देनेवाला वा दोनों गृहोंकी भयानक दशा करनेवाला है। इसके द्वारा वधकी प्राप्ति होना तो स्वाभाविक बात है। इस कर्मके द्वारा प्राणी दोनों लोकोंमें अनेक कष्ट भोगते हैं इसलिये व्रतधारी पाच अतिचारोंका भी परिहार करे यथा—

तेणाहडे १ तक्करप्पओगे २ विरुद्धरज्जाइक्कम्मे ३
कूडतुल्लकूडमाणे ४ तप्पडिरूवगववहारे ५

अर्थः—चोर की वस्तु लेना १ चोरकी रक्षा वा सहायता करना २ राज्यके नियमोंके विरुद्ध कर्म करना ३ खोटा तोलना और खोटा मापना (अधिक लेना न्यून देना) ४ प्रतिरूपक व्यवहार अर्थात् शुद्ध वस्तुमें अशुद्ध वस्तु एकत्र करके विक्रय करना ५ इन पाचों अतिचारोंका परित्याग करके तृतीय व्रत शुद्ध धारण करने योग्य है।

चतुर्थ अनुव्रत ।

हे आर्यपुरुषो! काम और इन्द्रियोंको वशकरना यही परम धर्म है जैसे इंधनसे अग्नि शांत नहीं होती केवल जलद्वारा ही उपशमताको प्राप्त होती है, उसी प्रकार यह कामाग्नि संतोष द्वाराही उपशम हो सक्ती है अन्य प्रकारसे नहीं । ब्रह्मचर्य्य-व्रत आत्मशक्ति, मुक्तिके अक्षय सुख, शरीरकी निरोगता, उत्साह, हर्ष का दाता और चित्तको प्रसन्न रखनेवाला है । उभय लोकमें यशप्रद हैं । इसके धारण करनेवाले आत्मा स्वस्वरूप वा परस्वरूपके पूर्ण वेत्ता होते हैं । गृहस्थ लोगोंको पूर्ण ब्रह्मचारी होना परम कठिन है, इसलिये गृहस्थ लोगोंको स्वदारसन्तोषव्रत धारण करना अत्यावश्यक है और स्त्रियोंके लिये भी स्वपतिसंतोष व्रत है जो उनको भी धारण करने योग्य है । इस व्रतके भी पाच अतिचार हैं यथा—

इत्तरियपरिग्गहियागमणे १ अपरिग्गहिया-गमणे २ अणङ्गकीड़ा ३ परविवाहकरणे ४ कामभोगातिव्वाभिलासे ५

अर्थः—लघु व्यवस्थायुक्त स्वस्त्रीके साथ सभोग करना, २ वाग्दत्ता स्त्रीके साथ भोग करना २ कामके वश होकर कुचेष्टा द्वारा वीर्यपात करना ३ परपुरुषोंकी मागका अपने साथ विवाह करना ४ काम भोगकी तीव्र अभिलाषा करना ५ इन पाचही अतिचारोंको त्यागकर स्वदारसंतोष व्रत [illegible]ना चाहिये ।

पंचम अनुव्रत ।

हे देवानुप्रियो! तृष्णाका कोई भी थाह नहीं मिलता। इच्छाके वशीभूत होकर प्राणी अनेक सकटोंका सामना करते हैं, रात्रि दिन इसकी ही चिन्तामें लगे रहते हैं। धनके लिये कार्य अकार्य करते लज्जा नहीं पाते और अयोग्य कामोंके लिये भी उद्यत हो जाते हैं परन्तु इच्छा फिर भी पूर्ण नहीं होती। अनेक राजे महाराजे चक्रवर्त्ती आदि भी इस तृष्णारूपी नदीसे पार न हुये और किसीके साथ यह लक्ष्मी न गई। इसलिये तृष्णारूपी नदीसे पार होनेके लिये सतोषरूपी सेतु (सेतु–पुल) बाधना चाहिये अर्थात् इच्छाका परिमाण होना चाहिये इस व्रतके भी पाचही अतिचार हैं यथा—

खेत्तवत्थुपमाणाइक्कमे १ हिरणसुवणपमाणाइक्कमे २ दुपयचउप्पयपमाणाइक्कमे ३ धणधाण्णपमाणाइक्कमे ४ कुवियपमाणाइक्कमे ५

अर्थः—क्षेत्र वस्तुके प्रमाणको अतिक्रम करना १ हिरण्य सुवर्णके प्रमाणको अतिक्रम करना २ द्विपद चतुष्पदादि पशुओंके प्रमाणको अतिक्रम करना ३ धनधान्यके प्रमाणको अतिक्रम करना ४ गृहसामग्रीके प्रमाणको उल्लघन करना ५ व्रतधारी गृहस्थको यह पाचो अतिचार वर्जने योग्य हैं।

षष्टम, सप्तम, अष्टम इन तीनों व्रतोको गुणव्रत कहते हैं, क्योंकि यह तीनो गुणव्रत पाचही अनुव्रतोंको गुणकारी

हैं और पाचही अनुव्रत इनके द्वारा सुरक्षित हैं। हे देवानुप्रियो! प्रथम गुणव्रतका नाम दिग्व्रत है जिसका अर्थ 'पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर, ऊर्ध्व, अधो दिशाओंका परिमाण करना' है। पुरुष जितनी मर्यादा करेगा, उतनाही आस्रव निरोध होगा। सो इस व्रतके भी पाचही अतिचार समाचरण अयोग्य है यथा—

उड्ढदिसिपमाणाइक्कमे १ अहोदिसिपमाणाइक्कमे २ तिरियदिसिपमाणाइक्कमे ३ खेत्तवुड्ढि ४ सइअंतरद्धा ५

अर्थः—ऊर्ध्व दिशाके प्रमाणका अतिक्रम करना १ अधो दिशाके प्रमाणका अतिक्रम करना २ तिर्यग् (मध्य) दिशाके प्रमाणका अतिक्रम करना ३ क्षेत्रकी वृद्धि करना ४ स्मृत्यन्तर्धा (शंका होनेपर भी प्रमाणसे अधिक गमन करना) ५ यह पाचो अतिचार दिग्व्रतको कलंकित करनेवाले हैं।

द्वितीय गुणव्रत।

जो वस्तु एकवार भोगने में आवे तथा जो वस्तु वारम्वार भोगनेमें आवे उसका परिमाण करना सो ही द्वितीय गुणव्रत है। इसव्रतके अन्तर्गत ही षड्विंशति २६ वस्तुओंका परिमाण अवश्य करना चाहिये जो इस प्रकार हैं:—

१ जलल्लपणवस्त्र (शरीरके पूंछनेका वस्त्र अर्थात् तौलिया) २ दंतमलापकर्षणकाष्ट (दातन) ३ फल (केशादि धोन-

नके वास्ते) ४ तैल ५ उद्वर्तन (उबटना) ६ मज्जन ७ वस्त्र अर्थात् वस्त्रोंकी जाति संख्या ८ विलेपन (चंदनादि) ९ पुष्प (शरीरके परिभोगनार्थ पुष्प) १० आभूषण (रत्नादि) ११ धूप १२ पेय (पीनेवाली वस्तु) १३ भक्ष (खानेवाली वस्तु) १४ ओदन १५ सूप (दाल) १६ घृतादि १७ शाक १८ माधुरक १९ जेमन २० जल (कूप या तालावका) २१ ताम्बूलादि २२ वाहन २३ जूती आदि २४ शय्या २५ सचित्त वस्तु (पृथ्वी, पानी, अग्नि वायु-आदि) २६ द्रव्योंका प्रमाण करना चाहिये तात्पर्य यह है कि विना परिमाण कोई भी वस्तु ग्रहण करना श्रमणोपासकको अनुचित है सो इसके पांच ही अतिचार हैं यथा—

सचित्ताहारे १ सचित्त पडिवद्धाहारे २ अप्पउलिओसहिभक्खणया ३ दुप्पउलि ओसहि भक्खणया ४ तुच्छओसहि भक्खणया ५

अर्थः—सचित्त वस्तुका आहार १ सचित्तप्रतिबद्धका आहार २ अपक्व आहार ३ दुःपक्व आहार ४ तुच्छौषधिका आहार ५ इन पांच अतिचारोंको वर्जके फिर १५ कर्मादान भी त्यागनीय हैं क्योंकि इन पंचदश कर्मोंके करनेसे महाकर्मोंका बंध होता है सो गृहस्थोंको जानने योग्य है अपितु ग्रहण करने योग्य नहीं है यथा—

१ अङ्गार कर्म (कोलोंका व्यापार) २ वनकर्म (वन कटवाना) ३ शकटकर्म (शकटादिका व्यापार) ४ भाटककर्म (पशुओंको भाडे पर देना) ५ स्फोटकर्म (कुद्दाल

हलादिसे भूमिको दारण करना) ६ दन्तवाणिज्य (हस्ती आदिके दांतोका व्यापार करना) ७ लाक्षा वाणिज्य (लाख तथा मजीठाका व्यापार) ८ रसवाणिज्य (घृत, तेल, गुड मदिरादिका व्यापार) ९ विपवाणिज्य १० केश-वाणिज्य ११ यन्त्रपीडन कर्म (कोल्हु ईख पीडनादि कर्म) १२ निर्लाञ्छन कर्म (पशुओंको नपसुक करना वा अवयवों का छेदन भेदन करना) १३ दवाग्निदान (वनादि जलाना) १४ सरोहृदतडाग परिशोपणता (जलाशयोंके जलको शो-पित करना, इस कर्मसे जो जीव जलके आश्रयभूत हैं वा जो जीव जलसे निर्वाह करते हैं उन सबको दुःख पहुंचता है और निर्दयता बढ़ती है) १५ असतीजन पोपणता कर्म (हिंसक जीवोंका पालना यथा—मार्जार, श्वानादि) यह कर्म गृहस्थोंको अवश्य ही त्याज्य है । तदुपरान्त तृतीय गुणव्रत धारण करना चाहिये ।

तृतीय गुणव्रत ।

हे देवानुप्रियो! तृतीय गुणव्रत अनर्थ दंड है । जो वस्तु ग्रहण करनेमें न आवे और किसीके उपकारार्थ भी न हो, निष्कारण जीवोंका मर्दन भी हो जावे ऐसे निंदित कर्मोंका अवश्यमेव ही परित्याग करना चाहिये । इस अनर्थ दण्डके मुख्य चार कारण हैं यथा—

(अवज्झाण चरियं पमायचरियं हिंसपयाणं पावकम्मो-वएस) आर्त्तध्यान करना क्योंकि इसके द्वारा महा कर्मोंका बंध, चित्तकी अशान्ति, धर्मसे पराङ्मुखता इत्यादि कृत्य

होते हैं इसलिए अपने सचित कर्मोंके द्वारा सुख दुःख जीवोंको प्राप्त होते हैं, इस प्रकारकी भावनाओं द्वारा आत्माको शान्ति करनी चाहिए। फिर कभी भी प्रमादाचरण न करना चाहिए जैसे घृत तैल जलादिको विना आच्छादन किये रखना यदि उक्त वस्तुओंमें जीवोंका प्रवेश हो जाए तो फिर उनकी रक्षा होनी कठिनही नहीं किन्तु असमव है। हिंसाकारी पदार्थोंका दान करना जैसे-शस्त्रदान, अग्निदान, और ऊखल मूमलदान इत्यादि दानोंसे हिंसाकी प्रवृत्ति होती है, सुकर्मकी अरुचि हो जाती है। चतुर्थ कर्म अन्य आत्माओंको पापकर्ममें नियुक्त करना, सो यह कर्म कदापि आसेवन न करने चाहिए फिर इस तृतीय गुणव्रतकी रक्षाके लिए पाच अतिचारोंको भी छोडना चाहिए जो निम्न प्रकारसे है॥

कंदप्पे १ कुकुइए २ मोहरिए ३ सजुत्ताहि गरणे ४ उवभोग परिभोग अइरित्ते ५

अर्थः—कन्दर्प (कामजन्य वार्त्ताओंका करना) १ कौत्कुच्य (कुचेष्टा करना) २ मौखर्य अर्थात् मर्मयुक्त वचन बोलना ३ प्रमाणसे अधिक उपकरण वा शस्त्रादिका संचय करना ४ उपभोग और परिभोगका प्रमाणसे अधिक सचय करना ५ यह पाच अतिचार छोडने चाहियें क्योंकि यह दोषरूप हैं अर्थात् इन अतिचारोंके द्वारा व्रत कलंकित हो जाता है और निर्जराका मार्ग भी बंद हो जाता है। तदनन्तर प्रत्येक गृहस्थको ४ शिक्षाव्रत धारण करने योग्य हैं यथा—

प्रथम शिक्षाव्रत ।

यह मनुष्य जन्म अतीव पुण्योदय से प्राप्त हुआ है उसको सफल करनेके लिये दोनों समय सामायिक करना चाहिये। * सम–आय–इक इन तीनोंकी संधि करनेसे सामायिक शब्द सिद्ध होता है जिसका अर्थ यह है कि आत्माको शान्ति मार्गमें आरूढ करना वा जिसके करनेसे शान्ति प्राप्त हो उसीका नाम सामायिक है । सो इस प्रकारसे भाव सामायिकको दोनो काल करे। फिर प्रातःकाल और सन्ध्याकालमें सामायिककी पूर्ण विधिको भली भांतिसे करता हुआ सामायिक सूत्रको पठन करके इस प्रकारसे विचार करे कि–यह मेरा आत्मा ज्ञानस्वरूप है, केवल कर्मोंके अंतरसे ही इसकी नाना प्रकारकी पर्याय हो रही है और अनादि काल के कर्मोंके सगसे इस प्राणीने अनंत जन्म मरण किये है। फिर पुनः २ दुःखरूपी दावानलमें इस प्राणीने परम कष्टोंको सहन किया है, और तृष्णाके वशमें होता हुआ अतृप्त ही मृत्युको प्राप्त होजाता है। सो ऐसे परम दुःखरूप ससारचक्रसे विमुक्त होनेका मार्ग केवल सम्यग् ज्ञान सम्यग् दर्शन सम्यग् चारित्र ही है। सो जब प्राणी आस्रवके मार्गोंको बंध करता है और आत्माको अपने वशमें कर लेता है, तब

* सम शब्दके सकारका अकार, ठण् प्रत्ययान्त होनेसे दीर्घ हो जाता है क्योंकि–जिस प्रत्ययके ञ्–ण्–इत्सञ्ज्ञक होते हैं उनके आदि अच्को आ–आर और [illegible] । इसी प्रकारसे सामायिक शब्दकी भी सिद्धि है

अवश्य ही करना चाहिये और इस व्रतके भी पाचों अतिचारोंको वर्जना चाहिये, जैसे कि—

मणदुप्पडिहाणे १ वयदुप्पडिहाणे २ कायदुप्पडिहाणे ३ सामाइयस्ससइअकरणया ४ सामाइयस्सअणवट्ठियस्स करणया ५

अर्थः—मनका दुष्ट प्रणिधान करना १ वचनका दुष्ट प्रणिधान करना २ कायाका दुष्ट प्रणिधान करना ३ शक्ति होते हुए भी सामायिक न करना ४ सामायिकके कालको पूरा न करना ५ इन अतिचारोंका परित्याग करके शुद्ध सामायिकरूप नियम दोनों समय अर्थात् सन्ध्या और प्रातःकाल सेवन करना चाहिये। यही प्रथम शिक्षाव्रत है।

द्वितीय शिक्षाव्रत।

देशावकाशिक।

षष्टम व्रतानुसार पूर्वादि दिशाओंके कृत परिमाणसे नित्यप्रति स्वल्प करते रहना उसका नाम देशावकाशिक व्रत है। इस व्रतमें चतुर्दश १४ नियमोंको धारण किया जाता है अपितु जिस प्रकारसे नियम किया जावे उसी प्रकार से पालन करना चाहिये, किन्तु परिमाण की भूमिकासे बाहिर पाचास्रव सेवनका प्रत्याख्यान करना चाहिये। इस ही कर्मोंके बंधनोंसे विमुक्त हो जाता है। सो इस प्रकारके सद्विचारोंके द्वारा सामायिक कालको परिपूर्ण करे। अपितु सामायिक रूप व्रत दो घटिका (घडी) प्रमाण दोनों समय

व्रतके धारण करनेसे बहुत ही पापोका प्रवाहबंधहो जाता है। इसके भी पाच ही अतिचार है यथा—

आणवणप्पओगे १ पेसवणप्पओगे २ सद्दा-णुवाए ३ रूवाणुवाए ४ बहियापोग्गलपक्खेवे ५

अर्थः—बाहिर की वस्तु आज्ञा करके मंगवाना १ परिमाणसे बाहिर भेजना २ शब्द करके अपनेको प्रगट करना ३ रूप करके अपने आपको प्रसिद्ध करना ४ पुद्गल प्रक्षेप करके प्रगट करना ५ यह अतिचार व्रत मे दोषरूप है। तदनन्तर पौषधव्रत अवश्य ही धारण करना चाहिये जिसके धारण करनेसे कर्मोंकी निर्जरा वा तपकर्म दोनो ही सिद्ध हो जाते है।

तृतीय शिक्षाव्रत।

उपाश्रयमें वा पौषधशालामें तथा स्वच्छ स्थानमें अष्ट यामपर्यन्त एक स्थानमें रहकर उपवास व्रत धारण करना उसका ही नाम पौषधव्रत है। अपितु पौषधोपवासमें अन्न, पाणी, खाधम, स्वाधम, इन चारो ही आहारका प्रत्याख्यान होता है, और ब्रह्मचर्य धारण किया जाता है। अपितु मणि स्वर्णादिका भी प्रत्याख्यान करना पडता है, शरीरके शृंगारका भी त्याग होता है, अपितु शस्त्रादि भी पास रक्खे नहीं जा सक्ते और सावद्य योगोका भी नियम होता है। इस प्रकारसे पौषधोपवासव्रत ग्रहण किया जाता है। प्रतिमासमें तथा शक्ति प्रमाण अवश्य ही

करने चाहिये । और पाचो अतिचारोंको भी त्यागना चाहिये-जैसेकि-

अप्पडिलेहियदुप्पडिलेहियसिज्जासंथारे १ अप्पमज्जियदुप्पमज्जियसिज्जासथारे २ अप्पडिलेहियदुप्पडिलेहिय उच्चारपासवणभूमी ३ अप्पमज्जियदुप्पमज्जियउच्चारपासवणभूमी ४ पोसहोववासस्स सम्म अणणुपालणया ५

अर्थः—शय्या वा सस्तारक प्रतिलेखन न करना यदि करना तो दुष्ट प्रकारसे १ शय्या वा सस्तारक प्रमार्जित नहीं करना यदि करना तो दुष्ट प्रकारसे २ पुरीष वा प्रस्रवन स्थान प्रतिलेखन न करना यदि करना तो दुष्ट प्रकारसे ३ उचार वा प्रस्रवन स्थान प्रमार्जित न करना यदि करना तो दुष्ट प्रकारसे ४ पौषधोपवास सम्यक् प्रकारसे न पालन करना ५ इस प्रकारसे पाचोंही अतिचारोंको वर्जकर तृतीय शिक्षाव्रत श्रावकोंको सम्यक् प्रकारसे ग्रहण करना चाहिये।

चतुर्थ शिक्षाव्रत ।

अतिथि सविभाग ॥

महोदयवर! चतुर्थ शिक्षाव्रत अतिथि सविभाग है जिसका अर्थ यही है अतिथियोंको सविभाग करके देना अर्थात् जो कुछ अपने ग्रहण करनेके वास्ते रक्खा है उसमेंसे अतिथियोंका सत्कार करना अपितु जो अतिथि (साधु) को दिया जाये वे आहारादि पदार्थ शुद्ध निर्दोष कल्पनीय हों

किन्तु दोषयुक्त अशुद्ध अकल्पनीय आहारादि पदार्थ न देने अच्छे हैं क्योंकि नियमका भग करना वा कराना यह महा पाप है। अपितु वृत्तिके अनुसार आहारादिके देनेमे कर्मोंकी निर्जरा होती है, वृत्तिके विरुद्ध देनेसे पापका बंध होता है। इस लिये दोषोंसे रहित प्रासुक एषनीय आहारादिके द्वारा अतिथि संविभाग नामक व्रतको सम्यक् प्रकारसे आराधन करे और पाचों अतिचारोंका भी परिहार करे, जैसेकि—

सचित्त निक्खेवणया १ सचित्त पेहणिया २
कालाइक्कम्मे ३ परोवएसे ४ मच्छरियाए ५

अर्थः—न देनेकी बुद्धि मे निर्दोष वस्तुको सचित्त वस्तुपर रख देना १ निर्दोषको सचित्त वस्तुसे ढाप देना २ काल अतिक्रम करना ३ परको आहारादि देनेके लिये उपदेश देना और स्वय लाभसे वचित रहना ४ मत्सरितासे देना ५ इन पाचों अतिचारोंको त्यागकर चतुर्थ शिक्षाव्रत पालन करना चाहिये।

सो यह पाच अनुव्रत, तीन अनुगुणव्रत, चार शिक्षाव्रत एव द्वादश व्रत गृहस्थी धारण करे, इसका नाम देशचारित्र हैं, क्योंकि सम्यग् ज्ञान, सम्यग् दर्शन, सम्यग् चारित्र, तीन ही मुक्तिके मार्ग हैं। इन तीनोंको ही धारण करके जीव ससारमे पार हो जाते हैं। इसलिये सदैवकाल सुकर्मोंमें उपस्थित रहना चाहिये।

---

१ यह द्वादश व्रत जैन सिद्धातके आश्रयसे लिखे गये हैं परन्तु इनका पूर्ण विवर्ण श्रीमद् उपासक दशाङ्ग सूत्रसे देखना चाहिये

करने चाहिये । और पाचो अतिचारोंको भी त्यागना चाहिये–जैसेकि–

अप्पडिलेहियदुप्पडिलेहियसिज्जासथारे १ अप्पमज्जियदुप्पमज्जियसिज्जासथारे २ अप्पडिलेहियदुप्पडिलेहिय उच्चारपासवणभूमी ३ अप्पमज्जियदुप्पमज्जियउच्चारपासवणभूमी ४ पोसहोववासस्स सम्मं अणणुपालणया ५

अर्थः—शय्या वा संस्तारक प्रतिलेखन न करना यदि करना तो दुष्ट प्रकारसे १ शय्या वा सस्तारक प्रमार्जित नहीं करना यदि करना तो दुष्ट प्रकारसे २ पुरीष वा प्रस्रवन स्थान प्रतिलेखन न करना यदि करना तो दुष्ट प्रकारसे ३ उच्चार वा प्रस्रवन स्थान प्रमार्जित न करना यदि करना तो दुष्ट प्रकारसे ४ पौपधोपवास सम्यक् प्रकारसे न पालन करना ५ इस प्रकारसे पाचोंही अतिचारोंको वर्जकर तृतीय शिक्षाव्रत श्रावकोंको सम्यक् प्रकारसे ग्रहण करना चाहिये।

चतुर्थ शिक्षाव्रत ।

अतिथि सविभाग ॥

महोदयवर! चतुर्थ शिक्षाव्रत अतिथि सविभाग है जिसका अर्थ यही है अतिथियोंको सविभाग करके देना अर्थात् जो कुछ अपने ग्रहण करनेके वास्ते रक्खा है उसमेंसे अतिथियोंका सत्कार करना अपितु जो अतिथि (साधु) को दिया जाये वे आहारादि पदार्थ शुद्ध निर्दोष कल्पनीय हों

उस समय 'मिथिलापुरी' एक नगरी थी, वहा 'देव' नामक महर्द्धिक ब्राह्मण बसता था, उसकी भार्याका नाम 'जयन्ती' था, उसका 'अकंपित' नामक अखिल विद्याप्रवीण पुत्र था।

उस समय 'कोशलापुरी' में 'वसु' नामक ब्राह्मण रहता था जिसकी पत्नीका नाम 'नन्दा' और पुत्रका नाम 'अचलभ्राता' था।

उसी समय 'वत्स' देशके 'तुंगिकारण्य' सन्निवेशमें 'दत्त' नामक विप्र था जिसकी 'करुणा' नामिका भार्या थी, उसके पुत्रका नाम 'मेतार्य' कुमार था तथा 'राजगृही' नगरीमें 'बल' नामक द्विज की पत्नी 'भद्रा' के अगजात 'प्रभास' नामक कुमार था।

यह पूर्वोक्त एकादश ११ कुमार चार वेद अठारह पुराणादिक समस्त शास्त्रोंके ज्ञाता और सकल विद्याओंके पारगामी प्रख्यात विद्वान् थे।

इन सबने अपने २ नगरोंमें पाठशालाएं खोल रक्खी थीं और यह प्रत्येक सैकडों विद्यार्थियों (शिष्यों) से युक्त थे तथापि इन सबमेंसे अधिक विद्वान् और महती कीर्तियुक्त इन्द्रभूति ही थे। जहा कहीं कोई धर्मकार्य होता था तो इन सबको आमन्त्रण आया करते थे।

एकदा अपापापुरीमें महर्द्धिक धनाढ्य सोमल ब्राह्मणने यज्ञ करवाना प्रारम्भ किया जिसके लिये यह पूर्वोक्त एकादश विद्वान् अपापापुरीमें आये हुये थे।

भगवान्के ऐसे अनुपम तथा अमृतसदृश उपकारी व्याख्यानको सर्व सभासद् इस प्रकार दत्तचित्तसे श्रवण करते रहे कि-मानो सर्व पुरुष आलेख्यलिखित ही है अर्थात् चित्रित किये हुये हैं ।

उसी काल और उसी समयमें मगध देशके 'गोवर' ग्राममें गौतम गोत्रीय 'वसुभूति' नामक द्विज वसता था उसकी 'पृथ्वी' नामिका पत्नी थी । इस ब्राह्मणके तीन पुत्र हुये १ इन्द्रभूति २ अग्निभूति ३ वायुभूति, यह तीनो द्विज-पुत्र व्याकरण, ज्योतिष, वैद्यक, काव्य, कोष, अलंकारादि समस्त विद्याओंमें निपुण थे ।

उसी समयमें कोल्लाग सन्निवेशमें 'धनुमित्र' और 'धम्मिल्ल' नामक दो ब्राह्मण वसतेथे । इन दोनों की 'वारुणी' तथा 'भद्रिलाभव' यह दो भार्या थी, दोनोंके दो पुत्र थे 'धनुमित्र' के पुत्रका नाम 'व्यक्त' और 'धमिल्ल' के पुत्रका नाम 'सुधर्म्मा' था । यह दोनों लडके बडे चतुर तथा प्रतिभाशालि वा विद्वान् थे ।

उसी कालमें 'मौर्याख्य' देशमें 'धनदेव' नामक ब्राह्मणकी 'विजयदेवी' नामिका धर्मपत्नी थी, उसकी कुक्षिसे 'मंडक' नामक कुमारका जन्म हुआ और उसी समय तथा उक्त देशमें ही 'मौर्यक' विप्रके गृहमें एक कुमारका जन्म हुआ जिसका नाम 'मौर्यपुत्र' रक्खा गया यह दोनों कुमार अनुक्रमसे पालित पोषित होते हुए सकल विद्याओंमें अग्रेश्वर तथा प्रधान होकर यौवनावस्थाको प्राप्त हुये ।

शेरके सदृश क्या कोई अन्य वनचर पशु बलवान हो सक्ता है? कदापि नहीं। आश्चर्यकी बात है कि-भला मनुष्य तो किसीके दम्भमें फस जावे किन्तु देव तो ज्ञानी होते हैं वे कैसे लोभायमान हो गये, अस्तु! अब मुझे योग्य है कि वहा उस सर्वज्ञके पास जाऊं और इन देवों तथा मनुष्योंके देखते हुये इसकी सर्वज्ञताका अपहरण करूं।

यह निश्चय करके अहकारसे उद्धत होता हुआ तथा पाचसौ ५०० शिष्योंसे परिवृत्त इन्द्रभूति भगवान्‌के समवसरणमें गया, वहा जाकर भगवान्‌की ऋद्धि, रूप तथा प्रौढ तेजको देखकर आश्चर्यसागरमें निमग्न हुआ २ स्थाणु की नाई भगवान्‌के सन्मुख खडा हो गया।

तब त्रिजद्गुरू श्रीभगवान् वर्द्धमान स्वामीजी अपनी अमृतरूपी वाणीसे प्रतिपादन करने लगे, कि-हे गौतम! किं तव स्वागतम्, इस बचनको सुनकर इन्द्रभूति विचारने लगा, कि-"मेरा नाम तथा गोत्र यह कैसे जानता है" और फिर स्वय वही सोचने लगा कि-"हा ठीक है मै तो सर्वत्र प्रसिद्ध ही हू, मुझे कौन नहीं जानता फिर यह मेरा नाम जान लेवे इसमें आश्चर्य ही क्या है हा, इसके ज्ञान की शक्ति तब जानू जब मेरे हृदयस्थ सशयको भापण तथा छेदन करे, भला किसी जगत्प्रसिद्धका नाम बता देनेमें भी कोई कठिनाई अथवा चतुराई है"।

जब इन्द्रभूतिके मनमें इस प्रकारके अध्यवसाय आरहे थे तब भगवान्‌ने प्रतिपादन किया, कि-हे गौतम! तेरे मनमें

यह प्रथम लिखा जा चुका है कि उस समय उक्त नगरीमें श्रीस्वामी भगवान् पूज्यपाद श्रीमहावीरजी सुख सातासे विराजमान थे। और चतुर् प्रकारके देवगण महाराज के दर्शनार्थ आ रहे थे। देवसमूहको आता हुआ देखकर *इन्द्रभूतिजी अन्य ब्राह्मणोंके प्रति बोले।

हे द्विजोत्तमो! यह सुर प्रत्यक्ष हमारे मन्त्रसे आह्वान किये हुये यज्ञमें आरहे हैं, अहोः हमारे मन्त्रमें कैसी अद्भुत शक्ति और आश्चर्य्यकारी प्रभाव है!!! देखिये! देखिये! किन्तु वह समस्त देव यज्ञवाटमें न ठहरकर उससे अतिक्रम होके भगवान्के समवसरणमें जाते थे, उनको इस प्रकार देखकर लोग कहने लगे कि—"इस नगरीके बाहर उद्यानमें सर्वज्ञ, सर्वदर्शी सकल अतिशयोंसे युक्त अर्हन् भगवान् श्रीवर्द्धमान स्वामीजी पधारे हुये हैं उन्हींको यह देव और नागरिक प्रधान पुरुष वन्दना वा नमस्कार करनेके लिये उक्त उद्यानमें जा रहे हैं"।

इतना सुनते ही इन्द्रभूति अत्यन्त कुपित हो गया और मुह आई बोलने लगा—"इन देवों तथा मनुष्योंको धिक्कार है जो मुझे त्यागकर उस असर्वज्ञके पास जाते हैं। यह बहुत मूर्ख है जो आम्रफलको छोड़कर करीरफलको ग्रहण करते हैं। क्या कोई अन्य मेरेसे अधिक सर्वज्ञ है? कदापि नहीं, मैं ही सर्वज्ञ हू और दूसरा कोई सर्वज्ञ नहीं हो सक्ता।

---

* इन्द्रभूतिजीका नाम गौतम स्वामी भी प्रसिद्ध है क्योंकि 'गौतम' इनका गोत्र था।

तथा ब्रह्मचारी हो गये और अपनी आत्माका कल्याण करते हुये समय व्यतीत करने लगे।

इसके अनंतर जब अग्निभूतिने सुना कि मेरा भ्राता दीक्षित हो गया है तब उसने विचार किया कि—वह बडा इन्द्रजालिक है जिसने मेरे भ्राता इन्द्रभूति जैसे विद्वान्को भी जीतकर निज शिष्य बनालिया है अतः मुझे योग्य है कि मैं वहा जाऊ और उस सर्वज्ञवादीको जीतकर माया द्वारा पराजित अपने भाईको लाऊ। बडा आश्चर्य है कि सकलशास्त्र निष्णात, महान् बुद्धियुक्त इन्द्रभूतिजी जो वाद विवादमें सर्वदा अजेय है फिर किस प्रकार उनके फदेमें आगये, सत्य है मायाके जालमें कौन नहीं फस जाता, अस्तु! मैं उसके पास जाता हू यदि उस सर्वज्ञवादीने मेरे हृदयस्थ सशयको छेदन कर दिया तो मैं अपने भाई इन्द्रभूतिकी नाईं उसके पास सशिष्य दीक्षित हो जाऊगा और यदि उसने मेरे सन्देहका दूरीकरण न किया तो उसका अपमान करूगा तथा अपने भाईको उसके मायाजालसे छुडाकर ले आऊंगा। इस प्रकार अग्निभूति विचार करके ५०० शिष्योंसे परिवृत्त होता हुआ भगवान्के समवसरणमें गया और, भगवान्के समीप जाकर खडा हो गया।

तब श्रीश्रमण भगवान् महावीरजी ने प्रतिपादन किया। हे द्विजकुलोद्भव गौतमगोत्रीय अग्निभूते! 'कर्म है या नहीं' क्या तेरे मनमें यही सन्देह है तथा मूर्तिमान् होने पर भी यह प्रत्यक्षादि प्रमाणों द्वारा अगम्य है फिर मूर्तित्व

यह संदेह है कि जीव है या नहीं? अब मैं इसका उत्तर कहता हूं सो ध्यानमे सुन। हे इन्द्रभूति! जीव है और चित्त चैतन्य, विज्ञान तथा संज्ञा आदि लक्षणों द्वारा ज्ञेय है यदि जीव न होवे तो पुण्य पापका अधिकारी कौन हो तथा योग दानादि समस्त कर्म निष्फल हो जावें फिर इनके करनेका क्या कारण? सो जब इनका फल है तो यह अवश्य मानना पडेगा कि उस फलके भोगनेवाला भी कोई है सो वह प्रमाणादिसे सिद्ध आत्मा है।

इस प्रकार भगवान्के वचनामृत सुनकर इन्द्रभूतिजीने सन्देह तथा मिथ्यात्वको शीघ्र ही तिलाञ्जलि दी और महाराजको प्रणाम करके बोले। हे भगवन्! मैं अहकारान्ध होकर आपकी परीक्षाके लिये आया था, आपने अपनी वाणीरूप पीयूषधारासे मेरे मलीन अन्तःकरण तथा मुर्झाये हुए हृदयकमलको स्वच्छ, पवित्र और विकसित किया है अतः आप मेरे धर्म्मोपदेशक परम पूज्य है, इसलिये कृपा करके मुझे ससारार्णवसे तारें और मोक्षके मार्ग पर आरूढ करनेकी अनुग्रह करें।

तब भगवान्ने इन्द्रभूतिजीको भावि आद्यगणधर जानकर उनके पाच सौ ५०० शिष्योंके साथ अपने करकमलोंसे दीक्षित किया अर्थात् सामायिक चारित्र ग्रहण करवाया। पुन सात ७ दिनके पश्चात् महाराजने आपको छेदोपस्थापना चारित्र ग्रहण करवाया।

तब इन्द्रभूति आदि समस्त मुनि पाच समिति त्रिगुप्तियुक्त

मूर्त्त कर्मोंके साथ सम्बन्ध होनेमें किसी प्रकारकी क्षति नहीं अर्थात् अमूर्त्त जीवका मूर्त्तिमान् कर्मोंके साथ सगम होनेमें कोई हानि नहीं अतः इनका सम्बन्ध अमूर्त्त आकाश तथा मूर्त्त घटके सम्बन्ध की नाई यथार्थ वा समीचीन है। यदि यहा पर कोई आशका करे कि-कर्म तो जड़ हैं वह चैतन्य जीवको किस प्रकार सुखदुःख दे सकते हैं (उत्तर) ससारमें देखा जाता है कि *सुरा अथवा अनेक विधिकी औषधिया जड़ होने पर भी चैतन्य आत्माको मूर्छित वा व्यामुग्ध कर

---

* यदि कोई यह प्रश्न करे--

प्रश्न--जो दृष्टान्त शराब वगैरहके पीनेमें नशा आनेका दिया है वुह ठीक नहीं, क्योंकि मदिरा द्रव्य है और पीना कर्म है यदि पीने कर्मका फल यही तो जल पीनेमें भी नशा होना चाहिये क्योंकि पीना कर्म तो इस जगह पर भी विद्यमान है।

उत्तर--हे आर्य! पूर्वोक्त दृष्टात अक्षर प्रत्यक्षर सत्य है, पर द्रव्य और कर्म दोनोंमें ही हैं, यदि द्रव्यमें ही माना जावे तो बोतलमें या किसी जीवके बिना मदिरापानके ही उसको नशा होना चाहिये क्योंकि मद्य द्रव्यका सद्भाव है। कर्म शब्द जीव की क्रियाका वाचकही नहीं वरन् उसे कार्माण स्कन्धरूप पुद्गल द्रव्य भी इष्ट हैं जिसका बध जीवकी रागादिक क्रियाओंसे होता है। जिस प्रकार मद्यके दृष्टातमें पीने कर्मका फल यह है कि वह मद्य द्रव्यको किसी मनुष्यके उदर (पेट) में पहुचावे और पेटमें पहुची हुई मदिरा द्रव्यका फल यह है कि वह अपने उदयकालमें नशा करे ठीक उसी प्रकार दार्ष्टान्तमें जीव की रागादि क्रियाका फल यह है कि वह तीनों लोकमें भरे हुये कार्माण वर्गणाओंका बध जीवसे करावे और इन बधावस्थाको प्राप्त कार्माण वर्गणाओं (जिनमें उनके बध करते समय जीवके भिन्न २ परिणामानुसार भिन्न २ फल देनेकी शक्ति हो गई है) का फल यह है कि वह अपने उदयकालमें भिन्न २ फल बाह्य निमित्तानुसार दें।

कर्मोंका अनादि अनत सम्बन्ध है. सो मुख्यतया कर्मोके आठ भेद है-यथा ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र, अन्तराय, पुनः इनकी १४८ प्रकृतिया और अनेक भेद हैं। हे अग्निभूते! यह कर्म अतिशय ज्ञानयुक्तोंके तो साक्षात् प्रत्यक्ष है तथा तेरे जैसे अथवा सामान्य व्यक्ति इनको अनुमान द्वारा जान सक्ते हैं। कर्मोंकी विचित्रतामे जीव सुखदुःख भोगते हैं, शुभ कर्मोंके फलमे बहुत प्राणी हस्ती, अश्व, रथ, धन, धान्य राज्य तथा अन्य राज्याभिषेकके योग्य सुखदायिका ऋद्धिको प्राप्त करते हैं, और कई एक प्राणी पूर्वसचित अशुभ कर्मोंके फलसे दासत्वको प्राप्त होकर घर २ में भटकते है। एक २ महर्द्धिक पुरुष अनेक प्रकारके सुख अनुभव करनेके अतिरिक्त दान द्वारा अन्य सहस्रो पुरुषोंके उदर पूर्ण करते है, और कई एक तो समस्त दिन प्रात काल एक घरसे दूसरे घर तक घोर पर्यटन करनेके पश्चात् भी सायको उदर पूर्ण करनेमें समर्थ नहीं होते तथा क्षुधामे पीडित अथवा पिपासा से व्याकुल और मुखसे "हाय रोटी" इन अक्षरोंका जाप करते है, और परलोकरूपी तीर्थधामके यात्री बन जाते है। देखिये कर्मोंकी कैसी विचित्रता है कि तुल्यकाल तथा देशमें दो व्यवहारियोंके व्यवहार करनेपर एकको भूयिष्ठ लाभ होता है तथा दूसरेका सर्वनाश हो जाता है इत्यादि विचित्र प्रकारके कार्योंके कारण कर्म ही हैं क्योंकि बिना कारणके कार्य्य उत्पन्न नहीं होता, और अमूर्त्त जीवका

देती है तो फिर कर्म जड होने पर चैतन्य जीवको सुख-दुःख देवें इसमें आश्चर्यही क्या है।

इस प्रकार भगवान्के प्रतिपादन करने पर अग्निभूतिजी के सर्व संशय दूर हो गये तथा स्तब्धता भी किसी दिशाको पलायन कर गई। फिर उन्होंने आप और अपने ५०० शिष्योंके साथ भगवान् श्रीवर्द्धमानस्वामीके समीप दीक्षा धारण की। श्रीभगवान्ने उस समय उनको पाच महाव्रत और छटा रात्रिभोजनविरमणव्रत ग्रहण करवाये। यथा–

सव्वाउ पाणाइवायाउ वेरमण।

सर्वथा प्रकारसे प्राणातिपात (हिंसा) से निवृत्ति करना, अर्थात् मनसे दुष्ट विचार न करना, वचनमें किसीको दुःख-दायक शब्द न भाषण करना, तथा काया से किसी जीवका संहार न करना, स्वयं जीवहिंसासे सर्वथा प्रकारसे निवर्तना, औरोंको हिंसासे निवृत्ति करनेका उपदेश देना तथा जो प्राणी जीवहिंसा करते हैं, उनकी अनुमोदना न करना, इसको दयाव्रत या प्राणातिपात विरमणव्रत भी कहते हैं। यह अहिंसाव्रत प्राणीमात्रका हितैषी तथा सर्व जीवोंको सुखदायक है, संयम वा मुनिवृत्ति-रूप वृक्षका मूल है, सत्य तथा ऋजुता इससे उत्पन्न होते हैं। यह दया दुर्गतिमें जाते हुये प्राणीका हस्तावलम्बन बन कर उसे कुगतिमें जानेसे रोकती है तथा जितने भी सुख हैं वे सर्व दयासे ही उपलब्ध होते हैं अतः अहिंसा माताके समान सर्व जीवोंसे हित करनेवाली है और अमृतके

सदृश आत्माको तृप्त करनेवाली है, तथा ससारमें दुःखरूपी प्रचंड दावानलको उपशान्त करनेके लिये यह दया मेघमालाके तुल्य है भवभ्रमणरूप महा व्याधिके वास्ते रोगकुठार नामक परमौषध है। इस अहिंसाव्रतके द्वारा समस्त ब्रह्माण्डवासी जीवोंके साथ मैत्रीभाव हो जाता है, इसलिये मुनियोंका सबसे प्रथम महाव्रत प्राणातिपात विरमण है। इस महाव्रतकी पाच भावना हैं। जैसेकि—

"वाङ्मनोगुप्तीर्यादाननिक्षेपणसमित्यालोकितपानभोजनानिपञ्च" ॥

(तत्वार्थ सूत्र अ० ७)

प्रथम भावना—वचनको वशमें करना, और दुःखप्रद, कटुक, सावद्यकारी, परमर्मभिन्दक, क्लेहउत्पादक तथा दुष्ट वचन भाषण न करना। मृदुभाषी वा सबके हितैषी होना।

द्वितीय भावना–मनको वशमें रखना, और हिंसादि कुकर्मोंकी ओर जानेसे रोकना, अर्थात् मनके द्वारा किसी भी जीवकी हानि चिंतवन न करना, क्योंकि मनको शुभ धारण करना महाव्रतोंकी रक्षाके लिये आवश्यक है।

तृतीय भावना–प्रथम महाव्रतधारी मुनि–उठना, बैठना, चलना, फिरना (गमनागमन), शयन करना और शरीरके अवयवोंको सकोचना वा पसारना आदि समस्त क्रियाये विनायत्न कदापि न करे अर्थात् इन कार्योंमें अतीव यत्न वा विवेक करे ॥

चतुर्थ भावना–द्विचत्वारिंशत ४२ दोषोंसे रहित निर्दोष अन्नपानी सेवन करे तथा ऐसे निर्दोष आहार परभी ममत्व भाव न करे अर्थात् मूर्छित न होवे, गुरुकी आज्ञाके अनुसार सदा अपनी क्रियामें प्रवृत्त (मग्न) रहे ।

पचम भावना–मुनिने पीठ, फलक, सस्तारक, शय्या, वस्त्र, पात्र, कवल, रजोहरण, चोलपट्टक (कटिबधन) और मुखपत्ति जो मुख बाधनेका वस्त्र होता है आदि उपकरण सयमके निर्वाहके लिये ग्रहण किया हुआ है, उस उपकरणकी नित्यप्रति उभयकाल (सायकाल तथा प्रातःकाल) प्रतिलेखना करे, और प्रमादसे रहित होकर प्रमार्जन करे । उक्त उपकरणोंको यत्नसे रखे तथा धारण करे । तात्पर्य यह है कि–विवेकपूर्वक सर्व कार्य करे । ये प्रथम महाव्रतकी पच भावना हैं। इनके द्वारा प्रथम महाव्रत को शुद्ध धारण करे ॥

सव्वाऊ मुसावायाउ वेरमण ।

सर्वथा प्रकारसे मृषावादका त्याग करना, जैसेकि–मुनि आप अनृतभाषी न हो, औरोंको असत्य भाषण करनेका उपदेश न देवे, और जो असत्यभाषी हैं उनकी अनुमोदना न करे तीनों योगोंमे अर्थात् मनसे, वचनसे तथा कायासे सत्यका पालन करे, इसे मृषावाद विरमण व्रत कहते है । जो पुरुष इसको धारण नहीं करते, ससारमें उनका कोई मनुष्य विश्वास नहीं करता, उनकी प्रतीतिका नाश हो जाता है । असत्य भाषण मनुष्योंकी परम अधोगति कर देता है । वैर, विरोध, क्लेश, फूट, वा दुःख आदिके नवाकुर इससे

हरितवर्णीय हो जाते हैं, असत्यवादी पुरुष उभय लोकमें निन्दाका पात्र, निर्भत्सनीय वा कष्टोको सहन करता है। इस लिये सत्यभाषी बनना चाहिये। सत्यके माहात्म्यसे सर्व दुःख नाश होते है और दोनो लोकमें यश तथा सुखकी प्राप्ति होती है। सत्यसे वाणीकी शुद्धि होती है सर्व वाचिक शक्तियाँ इससे उपलब्ध होती है। सत्यवादि पुरुषका कहा हुआ वाक्य कदापि निष्फल नहीं होता, वह अद्भुत वा आश्चर्यकारी कार्योके करनेमें समर्थ होजाता है। सत्यके मुख्यतया दो भेद हैं। द्रव्य सत्य और भाव सत्य। सासारिक वा व्यवहारिक कार्योंमें तो सत्य भाषण करना, किंतु सिद्धान्तमें नास्तिक होना, इसे द्रव्य सत्य कहते हैं। जो व्यवहारमें असत्य तथा सिद्धान्तमें सत्य हो, उसे भाव सत्य कहते हैं। सो द्वितीय महाव्रतको धारण करनेवाला मुनि दोनों प्रकारसे सत्य धारण करे, और असत्यका परिहार करे। अर्थात् द्रव्यमें भी सत्य और भावमें भी सर्वथा प्रकारसे सत्य ग्रहण करे। यह द्वितीय महाव्रत है। इसकी भी पाच भावना हैं—

यथा—

"क्रोधलोभभीरुत्वहास्यप्रत्याख्यानान्यनुवीचिभाषणं च पञ्च" ॥

(तत्वार्थसूत्र.)

प्रथम भावना—सत्यवादी क्रोधयुक्त वचन भाषण न करे क्योकि—क्रोधसे वैर, वैरसे पिशुनता, पिशुनतासे क्लेश

और क्लेशसे सत्य, शील, विनय आदि सर्व गुणोंका नाश हो जाता है। इस लिये मुनि क्रोधके वशीभूत न होवे।

द्वितीय भावना—सत्यवादी मुनि लोभका परिहार करे क्योंकि लोभके वशीभूत होता हुआ जीव सत्य, असत्य, योग्य, अयोग्य, और कर्तव्य, अकर्तव्यका विचार नहीं करता। इस लिये सत्यकी रक्षाके वास्ते लोभको त्यागना चाहिये।

तृतीय भावना—सत्यभाषी मुनिको भयका भी परित्याग करना चाहिये क्योंकि-भययुक्त जीवके प्रणाम कदापि स्थिर नहीं रहते, भययुक्त जीव मार्ग डरके अपने नियमोंका भी उल्लंघन कर जाता है, संयमको त्याग देता है। भीतिके वश होता हुआ सत्य तथा शीलसे भी पराङ्मुख हो जाता है, इस लिये द्वितीय महाव्रतधारी मुनिको अपने द्वितीय व्रतकी रक्षाके लिये भय छोड़ना चाहिये।

चतुर्थ भावना—सत्यवादीको चाहिये कि-किसीका उपहास्य कदापि न करे। हास्यसे विरोध, क्लेश, संग्राम और नाना प्रकारके दुःख उत्पन्न होते हैं। हास्यशील पुरुषकी प्रकृति ऐसी बिगड़ जाती है, कि-जबतक वह किसीसे हंसी ठट्ठा भंडचेष्टा कर्म न कर लेवे उसे शान्ति नहीं आती। उसकी चिंता इतनी विस्तीर्ण होती है कि-जिसका थाह नहीं आता प्रत्युत प्रत्येक दिनमें नूतनसे नूतन चिंता उत्पन्न होती है। इस उपहास्यके करनेवाला पुरुष अपने सत्य व्रतकी रक्षा नहीं कर सकता अतः इसे छोड़ना चाहिये।

पंचम भावना–सत्य व्रतकी रक्षाके लिये मुनिको चाहिये कि–वह विनाविचारे कभी भाषण न करे, तथा चपलता युक्त कटुक, सावद्यकारी और कौतूहलमय वचन उचारण न करे क्योंकि–इन वचनोंके भाषण करनेसे सत्य व्रत नहीं रह सकता इस लिये मुनि इसका भी त्याग करे और इन पाच भावनाओं द्वारा द्वितीय मृषावाद विरमण महाव्रतको शुद्ध धारण करे ॥

सव्वाऊ अदिन्नादाणाउ वेरमणं ।

सर्वथा प्रकारसे अदिन्नादान (विना दिये लेना वा चोरी) का त्याग करना चाहिये, अर्थात् तीनों करणों तथा तीनों योगोंसे चौर्यकर्मका परित्याग करना, जैसेकि आप चौर्यकर्म न करे, औरोंसे न करवाये, तथा जो चौर्यकर्म करते हैं उनकी अनुमोदना न करे मनसे, वचनसे और कायसे, इसे तृतीय महाव्रत कहते हैं, जो पुरुष इस व्रतको अगीकार करते हैं उनकी इस लोकमें यशोकीर्त्ति वा प्रतिष्ठा विस्तीर्ण हो जाती है, चाहे फिर वह कहींपर बैठे या कहीं खडा होवे, लोग उससे घृणा वा सकोच नहीं करते । सबको उस पुरुषका विश्वास हो जाता है । इस व्रतके धारी पुरुषको किसीका भय नहीं रहता तथा उसका आत्मा सदैव काल शाति, तृष्णाका निरोध, सतोष, परलाभकी अनिच्छा और ज्ञान आदि सुगुणोंसे विभूपित रहता है । और जो पुरुष इस व्रतको धारण न करके चौर्यकर्ममें लग जाते हैं, उनपर समस्त संसारकी विपत्तिया आती हैं, तथा उनकी

विद्या अध्ययन करे, क्योंकि विनय करना यह सबसे परम तप वा परमोत्कृष्ट धर्म है। यथा—

एव धम्मस्स विणउ मूलं परमोसेमुक्खो जेणकित्ति-सुय सग्घ नीसेस चाभिगच्छई।

इति वचनात् ॥

सो विनयपूर्वक सीखा हुआ ज्ञान ही सफलीभूत होता है, अतः मुनि विनयसे अध्ययन करे। अपितु इन पच भावनाओंसे तृतीय व्रतको शुद्ध धारण करे।

सव्वाउ मेहुणाउ वेरमणं।

सर्वथा प्रकारसे अर्थात् तीन करण वा तीन योगोंसे मैथुन विरमण चतुर्थ महाव्रतको धारण करे। यह व्रत समस्त तपों, जपों, मत्रों तथा नियमोंमें उत्तम है, यथा "तवेसुया उत्तम बंभचेरं" इस आगम वाक्यसे भी सिद्ध है। इस महाव्रतकी भी पच भावना है। यथा "स्त्रीरागकथा-श्रवण तन्मनोहराङ्गनिरीक्षण पूर्वरतानुस्मरण वृष्येष्टरसस्वशरीरसंस्कारत्यागाः पञ्च" ॥ (त० सू०)

प्रथम भावना–सभामें मुनि स्त्रियोंकी कथा, कामजन्य कथा, मोहको उत्पन्न करनेवाली कथा, तथा मनको व्याकुल करनेवाली कथा न करे अर्थात् चतुर्थ महाव्रतधारी ऐसी कथा न कहे, जिसके श्रवण करनेसे श्रोतावृंद विषय-मूर्छित वा विक्षिप्तचित्त हो जायें।

---

१ इस व्रतका सविस्तर स्वरूप मेरे लिखे हुये ब्रह्मचर्य दिग्दर्शन नामक पुस्तकमें देखना चाहिये ॥

द्वितीय भावना–नारीके रूपको तथा अंगोपांगको अवलोकन न करे, और स्त्रियोंके हास्य वा लावण्यरूप यौवनपर ध्यान न दे, तथा युवतियोंके मनोहर शरीरावयवों, और उनके कटाक्षयुक्त नेत्रों वा शेष कुचेष्टाओंको निरीक्षण न करे, क्योंकि–ऐसा करनेमें चित्त विकृतिवाला हो जाता है। इस लिये मुनि योषिताओंके रूपको न देखे। यदि कदाचित् स्त्रीके सुंदर अंगोंपर दृष्टि पड़ भी जावे, तो "भक्खरपिव दिट्ठं पडिसमाहरे" अर्थात् जैसे सूर्यको देखनेसे दृष्टि तुरंत हट जाती है, इसी प्रकार मुनि बहुत शीघ्र अपनी दृष्टिको खींच ले।

तृतीय भावना–पूर्व वयमें कृत काम क्रीडाओंको याद न करे, क्योंकि–इनकी स्मृति करनेसे योग वशमें नहीं रह सकते, तथा संयम पालन वा इन्द्रियनिग्रह करना बहुत कठिन तथा दुष्कर हो जाता है, मनमें दुष्ट प्रणाम उत्पन्न हो जाते हैं, जिनसे चित्त आकुल व्याकुल वा विक्षिप्त हो जाता है। अतः मुनिको चाहिये कि–पूर्वरत काम भोगोंको स्मरण न करे।

चतुर्थ भावना–ब्रह्मचारी स्निग्ध आहार तथा विषयोत्पादक भोजन वा अन्य पदार्थ सेवन न करे, क्योंकि–स्निग्ध आहाररूपी ईन्धनसे इन्द्रियरूपी वन्हिकुण्डमें विषयरूप अग्नि जाज्वल्यमान वा सदीप्त हो जाती है, जिससे आत्मादमन असंभव सा हो जाता है। इस लिये ब्रह्मचर्य व्रतकी रक्षाके [illegible] पुष्टिकारक वा बलिष्ट भोजन न करे

पंचम भावना—चतुर्थ महाव्रतकी रक्षाके लिये मुनिको चाहिये, कि—अपने शरीरका शृंगार न करे, जैसेकि—केशोंको कतरनीसे (कंघीसे) मार्जन करना, नख वा रोमादिको सवारना क्योंकि—ऐसा करनेमे इन्द्रियें बलवान् हो जाती है, फिर उनको वशमें करना कठिन हो जाता है। इस लिये साधु मैथुन विरमण व्रतकी रक्षाके लिये शृगारादि न करे और इन पच भावनाओं द्वारा इस महाव्रतको शुद्ध करके धारण करे।

सव्वाउ परिग्गहाउ वेरमण।

सर्वथा प्रकारसे परिग्रहकी निवृत्ति करना, तीन योगों या तीन करणोंसे, इसे पचम महाव्रत कहते हैं। इसको धारण करनेसे जीव लोभरहित वा सतोषी बन जाते हैं। उनकी आठ प्रहरकी भटकना वद हो जाती है। इस व्रतको ग्रहण करनेसे पुरुष अत्यत निर्भीत हो जाता है चाहे वह कहीं चला जाये, उसे कोई कुछ नहीं कहता। चौर्य कर्म करनेवाले पुरुष भी ऐसे व्रतीकी कुछ हानि नही कर सकते। लोभ सवधि वा परिग्रह सवधि जितने दुःख ससारमें भोगने पडते हैं वे समस्त कष्ट इस व्रतके धारण करने पर काफूर हो जाते हैं। जो आत्मा परिग्रहमें मूर्च्छित हो जाते है, वे सदा दुःखित, शोकाकुल तथा चितातुर रहते है, और ससारमें नाना प्रकारकी विकट पीडाओंको सहन करते हैं। भला परिग्रहमें रत पुरुषोंको सुख कहा? सुख तो संतोषमें है।

यथा—

सतोपाश्लिष्टचित्तस्य यत्सुखं शाश्वतं शुभम्।
कुतस्तृष्णागृहीतस्य तस्य लेशोऽपि विद्यते ॥ ७८९ ॥
यावत्परिग्रहं लाति तावद्धिंसोपजायते।
विज्ञायेति विधातव्य सङ्गः परिमितो बुधैः ॥ ७९० ॥
(अमितगति)

अर्थ—सतोपसे आर्द्र चित्तको जो शुभ और अविनाशी सुख प्राप्त होता है उसका लेश मात्र भी सुख तृष्णामें निमग्न हुये जीवको कहांसे हो सकता है? जबतक परिग्रहको रखेगा, तबतक हिंसा उत्पन्न होगी, ऐसा जानकर बुद्धिमानोंको परिग्रहका परिमाण करना योग्य है ॥ इति ॥ परिग्रहसे क्लेश, वैर, ईर्षा, असूया, तथा अहंकार आदि अवगुणोंकी वृद्धि होती है और राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया तथा लोभ आदि दोष भी इसीसे उत्पन्न होते हैं। जब कोई आत्मा परिग्रहमें मुग्ध होता है तो फिर वह न्याय या अन्याय, योग्य तथा अयोग्य किसी कार्यका विचार नहीं करता, केवल धनके सचय करनेमें ही मग्न रहता है। कहींसे मिल जाये और कैसे ही मिल जाये, चाहे चोरीका हो, चाहे लूटका, उसे तो धनसे काम है। इसी कारण उन पुरुषोंको कष्टों तथा विपत्तियोंका सामना करना पडता है। जिस समय आत्मा लोभके वशीभूत होता है, उस ... धर्म कर्मके विचार नहीं हो सकते। देखिये।
एकके पास सदाके लिये स्थिर

चोर इसको लूट कर ले जाते हैं, भूपति इसे छीन लेता है, अग्नि और जलके द्वारा भी इसका नाश हो जाता है, स्वजन, मित्र, ज्ञाति, बन्धु सब इसके हिस्सेदार हैं। भला फिर इससे लाभकी आशा ही क्या है। लोभी पुरुषोंको न दिनमें सुख और न रात्रिमें शांति। न इस लोकमें चैन और न परलोकमें सुख। संतोष भाव या निवृत्ति भाव तो लोभियोंके पास तक नहीं फटकता। इसी लिये उनको शारीरिक वा मानसिक सुख भी प्राप्त नहीं होते। आशा तो अनंत है और धन असंख्य है, भला फिर धनसे तृष्णा कैसे पूरी हो? सत्य लिखा है—

> सुवन्न रूवस्स ओपव्वयाभवे
> सियाहु केलास [केलासे] समा असंखया।
> नरस्स लुद्धस्स नतेहि किंचि
> इच्छाहु आगास समा अणंतिया ॥ १ ॥
> पुढवी सालि जवाचेव हिरन्न पसुभिस्सह।
> पडिपुन्न नाल मेगस्स इति विज्जा तवचरे ॥ २ ॥

अर्थ—यदि सुवर्ण और चांदीके कैलाश सदृश पर्वत भी लोभी पुरुषको दिये जायें, वे उसकी थोडीसी आशाको भी बुझानेमें समर्थ नहीं होते, क्योंकि—आकाशकी नाईं तृष्णा अनंत है ॥ १ ॥ समग्र प्रकारके धान्योंसे वा सुवर्णसे तथा मणि मोतियों और पशुओंसे सारी पृथिवीको प्रतिपूर्ण उपचित किया जाये, वह एक पुरुषकी पिपासाको भी उपशांत करनेमें समर्थ नहीं हो सकती, इस लिये इसके

शमनार्थ संतोष धारण, विद्या अध्ययन और तपाचरण करना चाहिये। यही तीन पदार्थ तृष्णाको शांत कर सकते हैं, क्योंकि-जैसे तृष्णा अनंत है वैसे ये तीन भी अनंत हैं। सो मुनिको परिग्रह विरमण पंचम महाव्रतद्वारा इसकी निवृत्ति करनी चाहिये। इस महाव्रतकी भी पंच भावना हैं। जैसेकि—

"मनोज्ञामनोज्ञेन्द्रियविषयरागद्वेषवर्जनानि पञ्च"–
(त० सू०)॥

प्रथम भावना-मुनि श्रोत्र इन्द्रियको वशमें करे अर्थात् मनोहर तथा मनोज्ञ शब्दोंको सुनकर राग, और परुष तथा अमनोज्ञ शब्दोको सुनकर द्वेष न करे, क्योंकि-इन्द्रियोंमें शब्दोंका प्रविष्ट होना यह स्वाभाविक धर्म है। इनमें राग द्वेष करनेसे कर्मोंका बंध होता है, इसलिये शब्दोंको सुनकर शांतिभाव रखे।

द्वितीय भावना-मनोज्ञ वा अमनोज्ञ रूपको देख कर मुनि राग द्वेष न करे अर्थात् चक्षु इन्द्रियको वशमें करे।

तृतीय भावना-मनोज्ञ दुर्गंध के मिलनेपर राग द्वेष न करे अर्थात् घ्राणेन्द्रियको वशमें करे।

चतुर्थ भावना-मधुर रसादियुक्त भोजनके मिलनेपर मुनि अपनी जिह्वाको वशमें रखे अर्थात् स्वादु भोजन मिलनेपर राग और अमनोज्ञ आहारके मिलनेपर द्वेष न करे।

पचम भावना–परिग्रह विरमण महाव्रतधारी मुनिको चाहिये कि–वह स्पर्शेन्द्रियको वशमें करे। मनोज्ञ वा अमनोज्ञ स्पर्शके प्राप्त होनेपर राग तथा द्वेष न करे। इस प्रकार पच भावनाओं करके पचम महाव्रतको शुद्ध धारण करे।

सव्वाउ राइभोयणाउ वेरमणं।

मुनि सर्वथा प्रकारसे पष्ठम रात्रिभोजन विरमण व्रत द्वारा रात्रिभोजनका परिहार करे जैसेकि–अन्न, पानी, खाद्यम (खाने योग्य मिष्टान्नादि) और स्वाद्यम (जो साधुके लेने योग्य–आस्वादन करने योग्य–लवग आदि) इन चार प्रकारके आहारोंका रात्रिमें तीन करण और तीन योगोंसे त्याग करे, क्योंकि रात्रिभोजनमें अनेक दोष दृष्टिगोचर होते है। रात्रिमें सूक्ष्म जीवोंकी रक्षा नहीं हो सकती और खानपान भी शुद्ध नहीं हो सकता। यदि भूलसे वा दृष्टिदोषसे भोजनमें जू, पिपीलिका, कोलिका आदि जीव भक्षण किये जायें तो जलोदर तथा कुष्टादि रोग उत्पन्न हो जाते हैं। रात्रिभोजन त्यागनेसे सहजमें ही तप हो जाता है तथा अन्य तपके विना किये ही अर्द्ध आयु तपमें लगती है। रात्रिभोजन त्यागियोंको प्रायः विशूचिकादि रोगोंसे शाति रहती है। उनके स्वास्थ्यमें किसी प्रकारसे परिवर्तन नहीं होता। ना ही उनको आलस्य वा निद्रा आदि सताते हैं। इस लिये रात्रिभोजन त्यागसे जीवरक्षा, स्वरक्षा, आत्मसमाधि, शाति, निरालस्य और ज्ञान ध्यान आदि अनेक लाभ उपलब्ध होते हैं। अतः मुनियोंको पष्ठम रात्रि-

भोजन विरमण व्रत भी अवश्यमेव धारण करना चाहिये। इसका ही नाम षष्ठम व्रत है।

इस प्रकार दीक्षा धारण करके अग्निभूति जी उग्र तप करते हुए विचरने लगे।

इन्द्रभूति वा अग्निभूति जी की दीक्षाको सुनकर तृतीय भ्राता वायु भूतिने विचार किया कि–जिसने मेरे दो भ्राताओंको जीत लिया है, तथा उनको दीक्षित करके निज शिष्य भी बना लिया है ठीक वह सर्वज्ञ ही है इस में कोई संशय नहीं अतः मुझे भी योग्य है कि–वहां जाऊं, उनको वंदना नमस्कार करूं तथा अपने हृदयस्थ संशय का निराकरण कराऊं।

इस प्रकार सोचकर वायुभूति भगवान्के समवसरणमें गया और प्रणाम करके बैठ गया।

तब त्रिजगन्नाथ श्रीमहावीर स्वामीने प्रतिपादन किया हे वायु भूते! तेरे मनमें यह सन्देह है कि "जीव तथा शरीर एक ही है, पृथक २ नहीं, प्रत्यक्ष द्वारा अगृहीत होनेसे तनुसे जीव भिन्न नहीं, किन्तु आत्मा और शरीर दोनो एकही हैं इसलिये जीवही शरीर तथा शरीरही जीव है, यथाजलमें बुलबुला."।

हे वायुभूते! *यदि शरीर और आत्मा एकही है तो

* श्रीमहामहोपाध्यायान्नमभट्टविरचित तर्कसंग्रह नामक ग्रन्थ की दीपिकामे भी ऐसा लिखा है—तथा च पाठ सुखादिक जीवलक्षण ॥ ननु "मनुष्योऽहं ब्राह्मणोऽहम्" इत्यादौ सर्वजनीनप्रत्यये शरीरस्यैव विषयत्वाच्छरीरमेवात्मेति

शरीरका नाश होनेपर जीवका भी नाश होना चाहिये, सो यदि जीवका नाश होना माना जाये तो शुभ कर्म करने और अशुभ कर्म त्यागनेका उपदेश व्यर्थ वा निष्फल होना चाहिये, जब ऐसा है तो पापी या अपराधी को दण्ड और धर्मात्माको यथेष्ट धन्यवाद देना अयोग्य है ऐसा करनेसे न्याय तथा नीति की कुछ आवश्यका न होगी। प्रत्युत कोई व्यभिचार करे, कोई चोरी करे, अथवा कोई कैसाही फल्गु कार्य्य करे उसे कुछ दण्ड न देना चाहिये, तात्पर्य यह है कि-जीव तथा शरीरको एक माननेसे पूर्ण नास्तिकता आती है और यावत् सुकर्मोंका करना अनावश्यक तथा निरर्थक ठहरेगा।

हे वायुभूते! 'वही जीव और वही शरीर है' यह तेरा कथन मिथ्या है क्योंकि शरीरधारी जीवोंके जीव देश प्रत्यक्ष हैं तथा वह अपने चैतन्यादि गुणों वा ईहादिकोंके द्वारा जाना जाता है किन्तु सर्वज्ञोंके हस्ताम्बल की नाईं प्रत्यक्ष है। यदि शरीरही जीव होता तो मृत्युसमय जब पाचों इन्द्रिया तथा शरीर विद्यमान होता है, प्रागवत् चेष्टा क्यों नहीं होती, अर्थात् उस समय देह आदि समस्त विद्य-

---

चेन। शरीरस्य करपादादिनाशे शरीरनाशादात्मनोऽपि नाशापत्ते। नापि इन्द्रियाणामात्मत्वम्। तथात्वे 'योऽहं घटमद्राक्षं सोऽहं इदानीं स्पृशामि' इत्यनुसधानाभावप्रसगात्॥

अन्यानुभूतेऽन्यस्यानुसधानायोगात्॥ अनुभवस्मरणयो सामानाधिकरण्येन कार्यकारणभावस्य नियतत्वात्। तस्माद्देहेन्द्रियव्यतिरिक्तो जीव सुखादिवैचित्र्यात् प्रतिशरीर भिन्न॥ इति॥

मान भी होते हैं परन्तु तो भी चलना, फिरना, बोलना, खाना, पीना आदि चेष्टायें नहीं देखी जातीं। इससे सिद्ध हुआ कि-उस समय अन्य सर्व वस्तुओंके (देह इन्द्रियादिके) विद्यमान होते हुये भी जीवके न होनेसे पूर्वोक्त चेष्टाओंका अभाव है अतः सिद्ध हुआ कि शरीर और इन्द्रियोंसे आत्मा (जीव) अतिरिक्त नित्य पदार्थ है वह तीन कालमें शाश्वत रहता है किन्तु पर्यायकी अपेक्षासे तथा कर्मोंकी प्रबलतासे संसारचक्रमें निरन्तर पर्य्यटन करता हुआ नाना प्रकारकी योनियोंको प्राप्त होता है और जब पूर्व पुण्योदयसे कभी धर्ममार्गमें आता है वा सम्यग्ज्ञान, सम्यग् दर्शन वा सम्यक् चारित्ररूप रत्नत्रयको ग्रहण करलेता है तब समस्त विकराल कर्मोंका नाश करके मोक्ष प्राप्त करता है।

इस प्रकार भगवान्के वचनामृत श्रवण करके वायुभूति अपने पाचसौ (५००) शिष्योंके साथ दीक्षित हो गया और अपने ज्येष्ठ भ्राताओंके सदृश साधु आचार सम्यक् प्रकारसे आराधन करने लगा।

इसके पश्चात् व्यक्त भी सोचने लगा कि-यह बाह्य वनस्थित भगवान् निश्चयही सर्वज्ञ हैं जिन्होंने इन्द्रभूत्यादि जैसे अजेय विद्वान् क्षणमात्रमें जीत लिये, इस लिये यह मेरा संदेह भी अवश्य छेदन कर देंगे यह मेरा दृढ विश्वास है सो मेरा संदेह दूर होने पर मैं भी इनका शिष्य हो जाऊंगा।

ऐसे विचारकर व्यक्त नामक धनुमित्रका-पुत्र (इसका

वर्णन प्रथम आचुका है) समवसरणमें आया और वंदना नमस्कार करके बैठ गया।

व्यक्तको आया देखकर श्रीश्रमण भगवान्ने प्रतिपादन किया कि–हे व्यक्त! तेरे मनमें यह संशय है कि–पृथ्वी, जल, तेजु, वायु और आकाश यह पांच भूत जो माने गये हैं यह मिथ्या हैं कोई भूत नहीं है और जो इनकी प्रतिपत्ति होती है वह जलचन्द्रकी नाईं भ्रमरूप है "सब कुछ शून्य ही है" यह तेरा दृढ़ विश्वास है

हे व्यक्त! यह तेरी कल्पना नितांत असत्य और प्रत्यक्षादि प्रमाणों द्वारा बाधित है, क्योंकि किसी एकवस्तुके सद्भावमें उसी वस्तुका असद्भाव नहीं हो सक्ता. यथा भूतलमें घट पटादिका सद्भाव होने पर "अघटपटवद्भूतल" यह नहीं कह सकते, यदि कहें तो प्रत्यक्ष प्रमाणद्वारा बाधित होनेसे असंघटित है, अथवा जब तेरे मतानुसार सब कुछ शून्यही है तो फिर स्वप्नावस्था तथा जाग्रतावस्था यह क्यों होती हैं, जब इन दो अवस्थाओंका होना असम्भव है तब "सर्वशून्यता" का होना केवल असम्भवही नहीं, प्रत्युत यह नितांत मिथ्या प्रमाण बाधित और स्वकपोलकल्पित असत्य कल्पना है।

इसप्रकार त्रिभुवननायक भगवान्के वाक्यामृत सुनकर व्यक्तजी को वैराग्यभाव उत्पन्न हो गया और अपने ५०० शिष्योंके साथ भगवान्के हस्तकमल से दीक्षित हो गये।

इसके अनंतर अपने शिष्यपरिवार सहित उपाध्याय सुधर्मा भी अपने सन्देहोंको दूर करनेके लिये भगवान् महावीर स्वामीके पास आये उनको देखकर भगवान्ने अपनी पीयूषधारारूपवाणी द्वारा अमोघ वर्षा करनी प्रारम्भ की, हे सुधर्मन्! तेरा यह मन्तव्य है कि जैसा इस भवमें जीव होता है वैसाही परलोकमें जाकर बनता है, यदि पूर्वभवमें कोई पुरुष है तो वह मृत्यु पाकर परभवमें भी मनुष्य होगा, जो पूर्व भवमें स्त्री है वह परलोकमें भी स्त्री होगी और इसी प्रकार पशु मरकर पशु, देव मरकर देव, और नारकी मरकर नारकी होता है तात्पर्य्य यह है कि पहिले भवमें जैसा जीव जैसी योनिमें होता है ठीक वहासे मरकर वैसाही जीव वैसीही योनिमें जाता है, ऐसा नहीं कि पुरुष मरकर स्त्री हो सकती है या स्त्री मरकर पुरुष बन सकता है क्योंकि कारणके सदृश ही कार्य्य होता है, अन्यथा नहीं यथा कलमबीज (धान्यविशेष) को बीजने पर यवका अङ्कुर कदापि नहीं हो सक्ता।

हे सुधर्मन्! यह तेरा कथन यथार्थ नहीं है क्योंकि पूर्व भवमें जो जीव जैसे कर्म करता है तदनुसार गतिको प्राप्त होता है यदि मनुष्यभवमें कोई पुरुष मानवजन्म लेनेके योग्य मृदुता, आर्जवता, सहनशीलता आदि सुकर्मोंको सचित [illegible] है वही परभवमें मनुष्य हो सकता है और जो [illegible] ऐत्योंसे रहित है वह पूर्वजन्ममें [illegible] ष्य कदापि नहीं बन सक्ता

देव, नारकी आदि समस्त योनियां कर्मानुसार प्राप्त होती हैं ऐसा नहीं कि जो पूर्वभवमें होवे वही परभवमें होवे जिन २ कर्मोंसे जिस २ गतिमें जीव जाता है वह तुझे सुनाता हू ध्यानसे सुनो।

यथा—

चउहि ठाणेहिं जीवाणे रतियत्ताए कम्म पगरेति, तंजहामहारम्भताते महापरिग्गहताते पंचेन्द्रिय वहेण कुणिमाहारेणं—

(श्रीस्थानागसूत्र, अध्याय ४, उद्देशा ४।)

भावार्थ—चार स्थानोंमें लगे हुये जीव नरकायुष्यको बाधकर नरकमें जन्मलेते हैं।

(१) महारम्भसे (२) महापरिग्रहसे (३) पचेन्द्रिय जीवोंका वध करनेसे (४) मास भक्षण करनसे (जीव नरकमें जाता है)।

चउहि ठाणेहिं जीवातिरिक्ख जोणियत्ताए कम्मं पगरेंति तजहा माइल्लताते, णिवडिमाइ-ल्लयाए, अलियवयणेण, कूडतुल्ल कूडमाणेण

(श्रीस्थानागसूत्र, अध्याय ४, उद्देशा ४।)

भावार्थ—चार प्रकारके कर्मोंमे जीव पशु योनि (तिर्यग् योनि) में जाते हैं—(१) छल करनेसे (२) छलमें छल करनेसे अर्थात् छलको असत्य भाषण द्वारा सिद्ध करनेसे (३) असत्यवचन बोलनेसे (४) खोटा तोल मापा कर-

नेसे,अर्थात् न्यूनदेना अधिक लेना अथवा न्यूनाधिक मापना इन चार कारणोंसे जीव तिर्यञ्च गतिको बांधते हैं।

चउहिं ठाणेहिं जीवामणुस्सत्ताते कम्म पगरेंति, तजहा पगतिभद्दयाए, पगति विणीयाए साणुक्कोसयाए, अमच्छरियाए।

(श्रीस्थानाग सूत्र, अध्याय ४, उद्देशा ४)।

भावार्थ—(१) प्रकृतिसे भद्र होनेसे (२) प्रकृतिसे विनयी होनेसे (३) सानुक्रोशी होनेसे अर्थात् दुःखीको देख दुःखी होनेसे या उसका दुःख दूर करनेसे (४) और किसीकी ऋद्धि तथा सम्पदा देखकर ईर्षा वा असूया न करनेसे जीव मनुष्य गतिको उपलब्ध करते हैं।

तथा—

चउहिं ठाणेहि जीवादेवाउत्ताए कम्मं पगरेंति तंजहा सरागसजमेणं, सजमासजमेण, बालतवोकम्मेण, अकामणिज्जराए।

(श्रीस्थानागसूत्र अ. ४ उ. ४ ।)

भावार्थ—(१) सराग संयमसे (साधुवृत्तिसे) (२) सयमासयमसे (श्रावकधर्मके पालनसे) (३) अज्ञान तपकर्मसे (४) और अकाम निर्जरासे जीव देवायुके कर्मोंका संचय करता है

नाणं च दंसणं चेव चरित्तं च तवोतहा ।
पन्नत्तो जिणेहिं वर दंसिहि ॥

ध्ययनसूत्र अध्याय २८ गाथा

भावार्थ—चार कारणोंसे जीव मोक्ष प्राप्त करते हैं (१) सम्यक्ज्ञानसे (२) सम्यग्दर्शनसे (३) सम्यक्चारित्रसे (४) और तपसे।

यह चार मोक्षके मार्ग सम्यक्दर्शी भगवान् अर्हन् देवोंने प्रतिपादन किये हैं इन्हींसे जीव मोक्ष गतिको प्राप्त कर सकते हैं सो हे सुधर्मन्! इस प्रकार निजकर्मोंके अनुसार जीव शुभाशुभ गतिमें जन्मलेते हैं किन्तु तेरा यह कथन "पुरुष मरके पुरुष और स्त्री मरके स्त्री होती है" यथार्थ नहीं है तथा "कारणके सदृश ही कार्य होता है" यह भी ठीक नहीं क्योंकि इसका सर्वथा नियम नहीं है यथा—

सदृशं कारणस्यैव कार्यमित्यप्यसंगतम्।
शृंगप्रभृतिकेभ्योऽपि शरादीनां प्ररोहणात्॥

कारणके सदृश ही कार्य होता है यह भी असंगत है क्योंकि पर्वत शृंगपर शर (अर्थात् शरको उसर कडा) के उगने से। इस प्रकारके भगवान्के निःस्वार्थ वा निष्पक्ष वचन सुनकर उपाध्याय सुधर्मा भी अपने ५०० शिष्योंके साथ भगवान्के चरणारविंदमें दीक्षित हो गये।

पुनः मण्डिक भी अपना सन्देह दूर करनेके लिये स्वामी के समवसरणमें शिष्यपरिवार सहित आया। तब देवाधिदेव श्रीश्रमण भगवान् महावीर स्वामीजी बोले।

हे मण्डिक! तेरे मनमें यह संशय है कि कर्मोंका बन्ध अथवा मोक्ष नहीं होता, सो यह कथन सत्य नहीं है क्योंकि

आत्माका कर्मबन्ध तथा उनका मोक्ष प्रसिद्ध है मिथ्यात्वादि कृत्योंसे जो कर्मोंका बन्ध होता है उसे बन्ध-कहते हैं। इसके प्रभावसे देव, मनुष्य, पशु और नरकादि योनियोंमें प्राणी परम दारुण दुःख अनुभव करते हैं और ज्ञान दर्शन चारित्र प्रमुख हेतुओंद्वारा कर्मोंके वियोग होनेको मोक्ष कहते हैं। आत्माके साथ कर्मोंका चार प्रकारसे सम्बन्ध होता है जैसेकि अनादि अनत १ अनादि सात २ सादिसात ३ सादि अनत ४ अभव्य आत्माके साथ कर्मोंका अनादि अनंत सम्बन्ध होता है क्योंकि जीवकी आदि न होनेसे अनादि और अभव्य जीव कभी मोक्षमें नहीं जाते, इस अपेक्षासे अनत है अर्थात् कभी भी दूर न होनेवाला अनादि अनत सम्बन्ध होता है। मोक्षमें जानेवाले जीवोंके साथ कर्मोंका अनादि सात सम्बन्ध है क्योंकि भव्य जीव कर्मोंसे रहित होकर मोक्षमें जाता है, इस अपेक्षासे भव्य जीवके साथ कर्मोंका अनादि सात सम्बन्ध है। जिस समय कोई कार्य्य किया जाता है वह दिन उस कर्मका आदि होता है और समयातरमें जब किसी दिन कर्मकी स्थिति पूर्ण होनेपर उसका फल मिलता है उसदिन उसका अन्तिम दिवस होता है इस अपेक्षासे कर्मोंका सम्बन्ध सादिसांत है क्योंकि ऐसा कोई भी कर्म नहीं कि जिसकी स्थिति अनादि कालकी हो, सबसे अधिक स्थिति मोहनीय कर्मकी है परन्तु वह भी संख्येय (संख्यावाली) अर्थात् सत्तर (७०) कोडाकोड सागरकी है इससे सिद्ध हुआ कि-जिसदिन किया जावे उस दिन आदि और जिस दिन

उसका प्रतिफल भोगा जावे उसदिन अंत होता है इस अपेक्षासे कर्मोंका सम्बन्ध सादिसांत है और जब जीव मोक्षमें गमन करता है तब कर्मोंका सांत जीवकी अपुनरावृति हो जाती है इसी कारणसे उसे सादि अनंत कहते हैं। सो इसी प्रकार अनादि कालसे चले आते हुये कर्मोंकी नाशावस्थाको मोक्ष कहते हैं, जैसे अग्नि औषधि आदिसे स्वर्णकी मल दूर होनेसे स्वर्ण निर्मल हो जाता है इसी प्रकार ज्ञानादि आत्मगुणों द्वारा कर्मरूपी मल दूर हो जाती है, तब आत्मा शुद्ध, निर्मल, अजन्म, सिद्ध, अजर, अमर हो जाता है और सदाके लिये मोक्षमें रहता है।

भगवान्‌की इस अमृतरूपी वाणीको सुनकर मंडिकजी निःसंशय हो गये और उसी समय अपने साढेतीनसौ (३५०) शिष्योंके साथ श्रीश्रमण भगवान् महावीर प्रभुके चरणकमलमें दीक्षित हो गये और व्रतोंको शुद्धतासे पालन करने लगे।

पुनः मौर्यपुत्रभी अपने संशयका निराकरण करनेके लिये अपने शिष्यपरिवारके साथ समवसरणमें आया।

तब भगवान् वर्द्धमान स्वामीने प्रतिपादन किया, कि–हे मौर्यपुत्र! तुझे यह सन्देह है कि "देव नहीं हैं क्योंकि यह नेत्रसे प्रत्यक्ष नहीं हैं" हे मौर्यपुत्र! यह कथन मिथ्या है। देख! इस समवसरणमें स्वयम् आये हुये शक्रेन्द्र आदि देवसमूह प्रत्यक्ष विद्यमान हैं। प्रत्यक्ष होनेपर अन्य प्रमाणकी क्या आवश्यक्ता? हां इतनी बात तो अवश्य है

कि-देव विना कारण मनुष्यलोकमें नहीं आते क्योंकि एक तो उनके सुखोंमें विघ्न होता है दूसरे उनको मर्त्यलोकमें अति दुर्गन्ध आती है इसलिये वह शेष कालमें नहीं आते किन्तु तीर्थंकर भगवानोंके जन्म, दीक्षा केवलज्ञान उत्पत्ति तथा निर्वाणादि कल्याणोंपर यह मनुष्यलोकमें आते हैं। तीर्थंकरोंके पुण्यपुजका प्रभावही ऐसा है कि इनको अवश्य ही आना पड़ता है, अतः इससे अतिरिक्त समयमें देवोंके न आनेसे उनका अभाव नहीं कहाजा सक्ता, किन्तु प्रत्यक्ष प्रमाणद्वारा सिद्ध होनेसे इनका अस्तित्व स्वतःसिद्ध है।

इसप्रकार भगवानके परम प्रभावशाली वचनोंको सुनकर मौर्यपुत्रजीका संशय दूर हो गया तथा वह शीघ्रही अपने ३५० शिष्योंके साथ दीक्षित हो गये।

फिर इसीप्रकार अकंपित भी अपने सन्देहकी निवृत्तिके लिये भगवान्के निकट आया।

तब भगवान्ने अपनी अमृतरस झरनी रसनामें प्रतिपादन किया कि-हे अकंपित! तेरा यह मन्तव्य है कि-"अदृश्यमान होनेसे नारकियोंका अस्तित्वही नहीं है अर्थात् नारकी नहीं हैं क्योंकि वह दृष्टिगोचर नहीं होते" सो हे अकंपित! यह तेरा कथन असत्य है नारकियोंका अस्तित्व तो है किन्तु वह परतन्त्र होनेसे इसलोकमें नहीं आसकते, जैसेकि-तेरे जैसे मनुष्य वहां नहीं जा सकते, छद्मस्थ मनुष्योंको नारकी अनुमानद्वारा ज्ञेय हैं किन्तु प्रत्यक्षोपलभ्य नहीं हैं और जो क्षायिक, ज्ञानी अर्थात् सर्वज्ञ, सर्वदर्शी

अर्हन् प्रभु है उसको करतलामलकवत् प्रत्यक्ष हैं, और यदि तुम यह कहो कि-कोई क्षायिक ज्ञानी (सर्वज्ञ) ही नहीं है तो यह भी कथन व्यभिचारी है क्योंकि इस आशंकाका मुझमें भी व्यभिचार है (अर्थात् मैं प्रत्यक्ष सर्वज्ञ हू) अतः वह तेरा पूर्वोक्त कथन सत्य नहीं है इससे सिद्ध हुआ कि-सर्वज्ञत्व भी प्रत्यक्षसे सिद्ध है और अनुमान द्वारा नारकियोंका अस्तित्व है।

भगवान् महावीर स्वामीके इसप्रकार वचनामृतको श्रवण करके अकंपितजीको वैराग्य होगया, पुनः वह भगवानके चरणसरोजमें ३०० शिष्योंके साथ दीक्षित होगये।

इसके पश्चात् अचलभ्राता वीर प्रभुके समीप आया।

उसको देखकर भगवान् बोले, हे अचलभ्राता! तेरे चित्तमें यह सन्देह है कि-"पुण्य पाप कोई वस्तु नहीं" सो हे अचल! इसविषयमें संशय मतकर, क्योंकि पुण्य पापका फल होता हुआ लोकमें प्रत्यक्ष देखा जाता है, दीर्घ आयु, लक्ष्मी, सौन्दर्य, नीरोग्य, सत्कुलजन्म, आर्यक्षेत्र आदि शुभ वस्तुओंकी प्राप्ति पुण्यके फलसे होती है और तुच्छ आयु, निर्धनता, कुरूपता, रोग, दुःख, दुष्टकुलजन्म, अनार्य क्षेत्र आदि अशुभ वस्तुओंकी प्राप्तिका कारण पापकर्म है। यदि पुण्य पाप कोई वस्तु न हो तो कोई सुखी, कोई दुःखी, कोई स्वामी, कोई सेवक, कोई धर्मात्मा, कोई पापिष्ठ और कोई सदाचारी, कोई दुराचारी इत्यादि यह दो अवस्थायें

न होनी चाहियें परन्तु यह तो ससारमें प्रत्यक्ष देखा जाता है।

९ कारणोंसे जीव पुण्य संचित करते हैं—यथा—

(१) अन्नदानसे (२) जलदानसे (३) मकानदानसे (४) शय्यादानसे (५) वस्त्रदानसे (६) मनशुभ वर्तानेसे (७) वचन शुभ कहनेसे (८) कायाको धर्म कार्योंमें लगानेसे (९) और अच्छे साधुओं वा तपस्वियोंको नमस्कार करनेसे (जीव पुण्यका संचय करते हैं)।

इनका फल प्राणी ४२ प्रकारसे सुखपूर्वक भोगते हैं और अष्टादश (१८) कारणोंसे जीव पापकर्मोपार्जन करते हैं यथा—

(१) जीवहिंसा (२) मृषावाद (३) चौर्य्यकर्म (४) मैथुन (५) परिग्रह (६) क्रोध (७) मान (८) माया (९) लोभ (१०) राग (११) द्वेष (१२) कलह (१३) अभ्याख्यान (१४) पैशून्य (१५) परपरिवाद (१६) रतिअरति (१७) मायामृषा (१८) मिथ्यादर्शनशल्य।

इन अष्टादश कारणोंसे जीव पापकर्मोंका सचय करते हैं और इसका परम दुःखफल ८२ प्रकारसे भोगते हैं।

श्रमण भगवान् महावीरने इस अनुक्रम पापपुण्यका विस्तारपूर्वक भिन्न करके विवर्ण सुनाया, जिससे अचलभ्राताको पुण्य पापके अस्तित्वका ज्ञान हस्तामलकवत् स्पष्ट वा सत्य प्रतीत होने लगा, तथा इस विषयमें उनका कोई संशय भी शेष न रहा।

तब अचलभ्राताने अपने ३०० शिष्योंके साथ त्रिजगन्नाथप्रभुके चरणोंमें प्रव्रज्या ग्रहण की अर्थात् दीक्षित हो गये ।

इसके अनन्तर मेतार्यजी अपने सन्देहको दूर करनेके लिये स्वशिष्यसमुदाय सहित समवसरणमें आये ।

तब भगवान्ने अपनी सुधा रस वर्षिणी रसनासे प्रतिपादन किया—कि हे मेतार्य! तेरे मनमें यह सशय है कि—पृथ्वी आदि पाच भूतोंसे यह आत्मा उत्पन्न होता है और इनके अभावसे आत्माका भी नाश हो जाता है इसी कारण भवातर रूप परलोक भी कोई वस्तु नहीं, जहा कि यह जीव पर्यटन करता हो ।

हे मेतार्य! यह तेरा मन्तव्य सत्य नहीं है, क्योंकि—कारणके सदृश कार्य होता है यथा मृत्तिकारूप कारणसे उत्पन्न हुआ घटरूप कार्य अपने मृत्तिकारूप कारणकी नाईं मिट्टीका ही रहता है किन्तु लोहे या पीतलका नहीं इसी प्रकार तन्तु कारणसे उत्पन्न हुआ पटकार्य भी तन्तुओंका ही होता है न कि पाषाणादिका ।

सो इसी प्रकार पाच भूत तो जड हैं इनसे चैतन्य स्वरूप जीव की उत्पत्ति कैसे सभव हो सकी है, यदि यह कहा जावे कि—जैसे घड़ी जड होनेपर भी शब्द करती तथा समय देती है और फोनोग्राफ (वादित्रविशेष) चैतन्यतारहित होनेपर भी पुरुषोंके सदृश गायन करता है इसी प्रकार जडरूप पाच भूतोंसे चैतन्य जीवके होनेमें क्या

आश्चर्य है? इसका उत्तर यह है कि प्रथम तो घड़ी अथवा फोनोग्राफ स्वयमेव उत्पन्न नहीं हो सकते, किन्तु किसी चैतन्य जीव द्वारा निर्माण किये जाते हैं।

द्वितीय–यद्यपि जीवके सगसे यह जीव की सदृश प्रतीत होते हैं परन्तु वास्तवमें जडही हैं क्योंकि–फोनोग्राफ चाहे मनुष्योंमें अच्छा गायन भी क्यो न करे उसको यह ज्ञान नहीं कि मैं क्या गाता हू, क्या मैं शुद्ध गायन करताहू अथवा अशुद्ध? घडी चाहे चाबीके प्रभावसे एक दो तीन शब्द करती है तो भी उसे स्वयं यह बोध नहीं कि मैंने कितने बजाये हैं? तात्पर्य्य यह है कि घड़ी तथा फोनोग्राफसे जीव अपना अर्थसाधन करता है अर्थात् घडीसे तो जीव यथार्थ समय ग्रहण करता है और फोनोग्राफसे गीत सुनकर अपना मन प्रसन्न करता है किन्तु यह दोनों जडही हैं, अथवा यदि पाच भूतोंसे ही आत्मा उत्पन्न होता है तो जीवित पुरुषकी नाई उसके शवमें (मृतक शरीरमें) गमन, भाषण, खान पानादि क्रियायें क्यों नहीं होतीं, पाच तत्व (पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश) तो मृतक शरीरमें भी विद्यमान होते है, इससे सिद्ध हुआ कि–जड़रूप पाच भूतोंसे आत्मा उत्पन्न नहीं होता, आत्मा तो अनादि अनत चैतन्य-स्वरूप न तो किसीसे उत्पन्न होता ही होता है। कर्मरूपी मलसे
 ज्ञान दर्शन चारित्ररूप

का अभाव हो जाता है, उससमय यही आत्मा शुद्ध, निर्मल, निष्कलंक, सिद्ध, बुद्ध, अजर, अमर हो जाता है।

श्रीश्रमण भगवान् महावीर स्वामीजीके इस प्रकार वचनामृत सुनकर मेतार्यजीका सन्देह दूर हो गया, तो मेतार्यजीने भगवान्से प्रार्थना की कि–हे स्वामिन्! मैं आपका शिष्य होना चाहता हूं अतः मुझपर करुणा करके मुझे दीक्षित कीजिये।

तब त्रिलोकपूज्य स्वामीने मेतार्यजी तथा उनके ३०० शिष्योंको स्व करकमलोंसे दीक्षित किया अर्थात् उन सबको सामायिक चारित्र प्रदान किया।

इसके पश्चात् प्रभासजी भी भगवान् वर्द्धमानस्वामीके समवसरणमें आये, तब आपने प्रतिपादन किया कि—हे प्रभास! तेरे मनमें यह संशय है कि–निर्वाण है या नहीं, सो इसमें सन्देह मतकर, क्योंकि कर्मक्षयका नाम ही मोक्ष (निर्वाण) है और शुद्धज्ञान, शुद्धदर्शन, तथा शुद्धचारित्र द्वारा कर्मोंका क्षय होना प्रमाणोंसे सिद्ध और युक्तिसंगत है। इसलिये निर्वाणके अस्तित्वमें कोई सन्देह नहीं, अतिशय ज्ञानवालोंके मोक्ष प्रत्यक्ष है तथा अल्पज्ञ आत्मा उसे अनुमान प्रमाण वा आगम प्रमाणसे जानते हैं मोक्षमें जीवको अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, निजगुण वा आत्मीक सुखकी प्राप्ति होती है। वह जीव जन्म, मरण, रोग, शोक, संयोग वियोगादिक संसारके समस्त दुःखोंसे रहित हो जाता है, पुनः संसारमें आगमन नहीं होता यथा—

दग्धे बीजे यथात्यन्तं प्रादुर्भवति नाङ्कुरः ।
कर्मबीजे तथा दग्धे न रोहति भवाङ्कुरः ॥

(तत्वार्थसार)

अर्थात् जैसे बीजके दग्ध होनेपर फिर अंकुर उत्पन्न नहीं होता, इसी प्रकार कर्मरूप बीजके दग्ध होनेपर जन्म (भव) रूप अंकुरकी उत्पत्ति नहीं होती, और उसके सिद्ध, बुद्ध, अजर, अमर, अविनाशी, परमात्मा, ईश्वर, अशरीरी, सर्व शक्तिमान् इत्यादि नाम कहे जाते हैं।

इस प्रकार भगवान्‌की योजन व्यापिनी सुधाभरणी मिथ्यात्व तिमिर विनाशिनी, लोकोत्तर परम दिव्यवाणीको सुनकर प्रभासजी निःसंशय होगये। और उसी समय अपने ३०० अन्तेवासिओंके साथ परम वैराग्यसे भगवान्‌के पास परिव्रजित (साधु) हो गये।

यह पूर्वोक्त इन्द्रभूति आदि एकादश पंडित (जो कि महाकुलीन, महाप्राज्ञ, चतुर्वेद तथा षट्शास्त्र वा सागोपाग वेत्ता सकल कलानिष्णात, पदार्थवित् और विश्ववदित थे) भगवान् श्रीवर्द्धमान स्वामीके प्रधान शिष्य हुये इससे ऊपर लिखा जा चुका है कि-दधिवाहन राजाकी कन्या चन्दनबाला जी जो कि अपने शीलरत्नके आश्चर्य्यकारी प्रभावको दिखाकर कौशाम्बी नगरीके महाराजाधिराज शतानीकके गृहमें इस आशासे ठहरी हुई थी कि भगवान् वर्द्धमानस्वामीको जब केवल ज्ञान हो जावेगा तब मैं महाराजकेपास दीक्षित हो जाऊंगी चन्दनबालाके ऐसे प्रणाम;

की बहुतसी कुमारिया भी इसके साथ दीक्षित होनेको उद्यत हो गईं और भगवान्को केवल ज्ञान होनेकी वाट देखने लगीं सो इस अवसरमें उन्होंने आकाशमें बारम्बार आते जाते हुये देवसमूहको देखकर निश्चित किया, कि अब महाराजको केवलज्ञान उत्पन्न होगया है। इसीलिये देवगण समवसरणको जा रहे हैं। ऐसा विचारकर वह सर्व व्रत आकांक्षिणी होती हुई समवसरणमें आईं और भगवान्को नमस्कार करके सन्मुख उपस्थित हो गईं।

तब चन्दनबालाजीने महाराजसे प्रार्थना की, कि–हे भगवन्! हम सबको जन्म, मरण, वृद्धावस्था, संयोग, वियोगादि असाध्य दुःखोंका संसारमे भय उत्पन्न होनेसे वैराग्यभाव हो गया है।

इसलिये हमारी इच्छा है कि–गृहस्थाश्रमको त्यागकर मुनिआश्रममें प्रवेश करें अर्थात् साध्वियां हो जायें, सो आप कृपा करके हम सबको दीक्षाप्रदान करें।

तब महाराजने उन सबकी विज्ञप्ति सुनकर स्वयमेव उनको दीक्षित किया, अर्थात् अपने मुखारविन्दसे पाठ उच्चारण करके उन सबको सामायिक चारित्रप्रदान किया और उन सबमेंसे चन्दनबालाजीको मुख्य पद (प्रवर्तिनी पद) पर स्थापन किया तदनन्तर समवसरणमें उपस्थित श्रोता जनोंमेंसे बहुत नरों ने गृहस्थाश्रमके द्वादशव्रत धारण किये, तथा इसी प्रकार उपस्थित श्राविकाओंने भी गृहस्थधर्मको अंगीकार किया।

इस अनुक्रमसे चार प्रकार अर्थात् साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविकाके संघके होचुकनेके पश्चात् भगवान्‌ने इन्द्रभूति आदिक एकादश प्रधान शिष्योंको ध्रौव्योत्पाद व्ययात्मक त्रिपदी मंत्र दिया अर्थात् यह बताया कि समस्त संसारमें केवल ६ द्रव्य हैं जैसे–(१) धर्म (२) अधर्म (३) आकाश (४) काल (५) पुद्गल (६) जीव।

इन ६ द्रव्योंसे अतिरिक्त अन्य कोई सातवां पदार्थ जगत्‌में नहीं है और इन षट् द्रव्योंमेंसे प्रत्येक २ की तीन २ पर्यायें होती हैं यथा–उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य। कल्पना करो कि किसी पुरुषके घर कोई बालक उत्पन्न हुआ तो वहांपर उसबालकके जीवकी उत्पत्ति कही जाती है और जहांसे वह मृत्यु होकर आया है वहां उसकी मृत्यु कही जाती है, परन्तु आत्मा वैसाही है न वह मरा है और न उसकी उत्पत्ति हुई है इसलिये वह ध्रौव्य है क्योंकि जीव त्रयकाल अविनाशी, नित्य, द्रव्य है इसी प्रकार अन्य पांच द्रव्योंकी भी तीन २ पर्यायें होती हैं इस त्रिपदी मंत्रसे उनको मति, श्रुति, अवधि तथा मनः पर्यव चारों ज्ञान और चतुर्दश पूर्वकी विद्या प्रगट हुई तब उनके गणधर पदवी भी उदय हो गई अर्थात् यह एकादशही विद्वान् गणधर पदवीसे विभूषित हो गये।

पुनः इन्होंने द्वादश अंग और चतुर्दश पूर्वकी रचना की यथा—

आचारांगं सूत्रकृतं स्थानागं समवाययुक् ।
पचम भगवत्यग, ज्ञाताधर्म्मकथापिच ॥ १ ॥
उपासकांतकृदनुत्तरोपपातिकादश ।
प्रश्नव्याकरण चैव विपाक श्रुत मणयथ ॥ २ ॥
दृष्टिवादश्चेत्यगानि तत्रिपद्या कृतानि तैः ।
पूर्वाणि दृष्टिवादान्तः सूत्रितानि चतुर्दश ॥ ३ ॥
तत्रोत्पादाग्रायणीये वीर्यप्रवादमित्यपि ।
अस्ति नास्ति प्रवादच ज्ञानप्रवाद नामच ॥ ४ ॥
सत्यप्रवादमात्मप्रवाद कर्मप्रवादयुक् ।
प्रत्यारयान च विद्याप्रवादकल्याणके अपि ॥ ५ ॥
प्राणावायाभिधान च क्रियाविशालमित्यपि ।
लोकबिन्दुसारमथ पूर्वाण्येव चतुर्दश ॥ ६ ॥
(श्री त्रिषष्टिशलाकापुरुष० पर्व १० सर्ग ५

भावार्थ—द्वादशांग के नाम—

(१) श्रीआचाराग (२) श्रीसूत्रकृताग (३) श्रीस्थानागसूत्र (४) श्रीसमवायाग (५) श्रीविवाहप्रज्ञप्ति (भगवती) अग (६) श्रीज्ञाताधर्मकथाग (७) श्रीउपासक दशाग (८) श्रीअंतकृताग (९) श्रीअनुत्तरोपपातिक दशांग (१०) श्रीप्रश्नव्याकरणाग (११) श्रीविपाकाग (१२) श्रीदृष्टिवादाग ।

चतुर्दश पूर्वोंके नाम—

(१) उत्पादपूर्व (२) अग्रायणीयपूर्व (३) वीर्यप्रवादपूर्व (४) अस्तिनास्तिप्रवादपूर्व (५) ज्ञानप्रवाद

पूर्व (६) सत्यप्रवादपूर्व (७) आत्मप्रवादपूर्व (८) कर्मप्रवादपूर्व (९) प्रत्याख्यानप्रवादपूर्व (१०) विद्याप्रवादपूर्व (११) अवंध्य (कल्याण) पूर्व (१२) प्राणावायाभिधानपूर्व (१३) क्रियाविशालपूर्व (१४) लोकबिन्दुसारपूर्व ।

(१) आचाराग—इस प्रथम अंगमें साधु साध्वियोंके आचार, भिक्षाविधि, विनय, विनयके फल, चारित्र, भाषण योग्य अथवा अभाषण योग्य भाषा, समस्त अहर्निशके कर्तव्यका, गमनागमन, समित्त, गुप्ति, तप, उपधान और संयमादिका सविस्तर तथा सुप्रशस्त वर्णन है, तथा इसमें ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार और बलवीर्याचारका भी स्पष्ट विवेचन किया गया है. इस अगमें दो श्रुतस्कन्ध, हैं जिसमें पंचविंशति (२५) अध्ययन है तथा इन २५ अध्ययनोंमें ८५ उद्देश हैं और १८००० अठारह हजार पद हैं ।

(२) सूत्रकृताग—इसमें लोकस्वरूप, अलोकस्वरूप, जीवस्वरूप, अजीवस्वरुप, जैन मतका स्वरूप तथा अन्य मतमतान्तरोंका स्वरूप प्रतिपादन किया गया है और क्रियावादियोंके १८० भेदों, अक्रियावादियोंके ८४ भेदों अज्ञानवादियोंके ६७ भेदों तथा विनयवादियोंके ३२ भेदोंका वर्णन करके युक्ति या प्रमाणोंद्वारा न्यायनीतिसे खंडन किया गया है, जैन मतमें माने हुये सिद्धान्तोंकी सप्रमाण यथार्थता निरूपण की गई है ।

अतएव यह सूत्रकृतांग सम्यक्त्व चक्षुविहीन मिथ्यात्वमें प्रवीण मनुष्योंके लिये यष्टिभूत, तथा अज्ञान अंधकारके कारण दुरधिगम या दुःसाध्य है, बोध जिनका ऐसे षट्द्रव्य-रूप ज्ञानके प्रतिबोध करानेके लिये दीपकतुल्य है और दुरारूढ मोक्ष प्रासादपर आरूढ होनेके लिये निर्वाणारोहण सोपान है अपितु जीव, अजीव, पुण्य पाप आस्रव, सम्वर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष इन नव तत्वोंका बड़ी सुगम रीतिसे विवेचन किया गया है, इस द्वितीय अंगमें दो श्रुतस्कन्ध, २३ अध्ययन, तथा त्रयस्त्रिंशत् उद्देश हैं और छत्तीसहज़ार (३६०००) पद हैं।

(३) स्थानांग—श्रीस्थानांगजी सूत्रमें दश अध्याय वा एकविंशति (२१) उद्देश है, प्रथम अध्ययनमें यावत् सूत्रपाठ है वह एक २ बातका विवेचन करते है, द्वितीयाध्ययनमें पक्ष तथा प्रतिपक्षकी अपेक्षासे दो २ बातोंका समावेश किया गया है, एवं तृतीयमें तीन २ चतुर्थमें चार २ यावत् दशवेंमें दश २ बातोंका अत्यंत रोचक शैलिसे समावेश किया गया है।

इस अंगमें शाश्वत भवनों, विमानों, सागरों, द्वीपों, पर्वतों, नदियों, तथा शैलकूटोंके नाम उनके स्थान और उनके आयाम विष्कंभादिका तथा भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषी, विमानवासी देवों वा इनके इन्द्रोंका सविस्तर स्वरूप कथन किया गया है विशेष करके इस अंगके चतुर्थ अध्यायमें तो गूढ रहस्य तथा अत्यन्त शिक्षाप्रद सूत्ररूप सातसौ (७००)

अनुपम मनोहर वर्णीय पुष्पोंसे गुफित माला है जो प्रत्येक व्यक्तिके कण्ठाभरण वनानेके योग्य है अर्थात् कण्ठस्थ करणीय है नवमें अध्यायमें श्रीमान् श्रेणिक महाराजका पूर्ण इतिहास प्रतिपादन किया गया है, इस अगके ७२ हजार (७२०००) पद है।

(४) समवायाग—इसमें एक दो तीन चार आदि संख्यासे प्रारम्भ करके शत, सहस्र, लक्ष, वा कोटि पर्यन्त गणनाके साथ पदार्थों, सुशिक्षाओं, आचारबोधक सूत्रोंको वडी सुंदरतासे दर्शाया गया है, द्वादशागका जो कि आचार्येके लिये रत्नके समान है और तदन्तर गत विषयोंका विविध विस्तारसे वर्णन किया है और भी बहुत प्रकारसे नारकीय, तिर्यञ्च, मनुष्य, वा सुरगणके आहार, भोग, आवास श्वासोच्छ्वास प्रमाण (आयुनिरूपण) उत्पत्ति, च्युति, लेश्या, योगेन्द्रिय, कषाय तथा इनकी नाना प्रकारकी योनियोंकी व्याख्या की गई है और इस अगमें महीधरों, कुलगरों, तीन काल, तीर्थ करों, गणधरों, समस्त भरताधित चक्रवर्तियों, वासुदेवों बलदेवों तथाप्रतिवासुदेवके नाम प्रतिपादन किये गये हैं, समवायागका एक श्रुतस्कन्ध, एक अध्ययन, और एक लाख चौरासी हजार (१८४०००) पद हैं।

(५) विवाहप्रज्ञप्तिअग–इस सूत्रमें नानाप्रकारके ३६००० प्रश्न है और उनके ३६ सहस्र ही उत्तर है प्रत्येक २ विषयका स[illegible] विवेचन कियागया है और इसके १०[illegible]

हैं, दो लाख अठासी हजार (२८८०००) पद हैं अपितु जीव, अजीव, लोक, अलोक, स्वसमय, परसमय और जीवोंके गमनागमनके विषयमें भली प्रकारसे वर्णन किया गया है अतएव ऐसा कोई भी विषय नहीं है जिसका इसमें वर्णन न कियाहो ।

(६) ज्ञाताधर्मकथाग–इस सूत्रके दो श्रुतस्कन्ध हैं, प्रथम स्कन्धमें १९ अध्याय हैं, जिनमें शिक्षाप्रद १९ दृष्टांत हैं द्वितीय स्कन्धमें साढेतीन कोटि प्रमाण धर्म कथायें हैं और यह कथायें शिक्षाप्रद होनेसे अतिरिक्त विचारणीय भी हैं क्योंकि इन दोनों श्रुतस्कन्धोंमें ऐसे आश्चर्य्यजन्य उदाहरण हैं कि–जिनके श्रवण वा मनन करनेसे आत्मा अपना उद्धार सुखपूर्वक कर सक्ता है और इसके पांचलाख ७६ सहस्र पद हैं (५७६००० पद) ।

(७) उपासकदशाग—श्रमणोपासकोंके नगर राजा माता पिता, वन खण्ड, भगवान्का विराजमान होना, व्रतोंका ग्रहण करना फिर ११ प्रतिज्ञाओंका पालन करना इत्यादि विषयोंका भली प्रकारसे वर्णन किया गया है और द्वादश व्रतोंका भी विवर्ण विस्तारपूर्वक किया गया है और इस सूत्रके १० अध्याय हैं, एकादशलाख ५२ सहस्र पद होते हैं और इसकी संख्यातवाचनादि हैं ।

(८) अंतकृतदशाग—जो जीव अंतकृतकेवली हुये हैं उनके नगर, मातापिता, राजा, ऋद्धि, वनखण्ड, उनकी दीक्षा, तप, अभिग्रह, इत्यादि विषयोंका सविस्तर स्वरूप वर्णन किया

गया है और जिस प्रकार वह जीव मोक्षगत हुये हैं वह सर्व वर्णन श्रवण करने योग्य है।

इस सूत्रका एक श्रुतस्कन्ध है और आठ इसके वर्ग हैं तेईसलाख चार सहस्र (२३०४०००) इसके पद हैं, संख्यात वाचनादि हैं, आठ (८) उद्देश काल हैं।

(९) अनुत्तरोपपातिक—जो आत्मा पांच अनुत्तरों विमानोंमें उत्पन्न हुये हैं उनके नगर, मातापिता, राजा, दीक्षा, इनकी ऋद्धि, धर्माचार्य्य, तप, कर्म, अभिग्रह आदि करके फिर अनुत्तर विमानोंमें उत्पन्न हुये अपितु वहांसे च्युत होकर फिर आर्यकुलमें जन्म लेकर, फिर दीक्षित होकर, केवल ज्ञानकी प्राप्ति होगी, फिर वह जीव मोक्षगमन करेंगे इत्यादि विषयोंका सविस्तर स्वरूप वर्णन किया गया है, इस सूत्रका एक श्रुतस्कन्ध है और तीन इसके वर्ग हैं छयालीस लाख आठ सहस्र पद हैं (४६०८०००) संख्यात वाचनादि हैं।

(१०) प्रश्नव्याकरणांग—इस सूत्रका भी एकही श्रुतस्कन्ध है पैंतालीस ४५ इसके अध्याय हैं इसमें सैंकडों प्रश्नोंके उत्तर हैं और नाना प्रकारके प्रश्न हैं नाना प्रकारकी विद्याओंका भी इसमें विवर्ण किया है देवताओंके भी साथ मुनियोंके नानाप्रकार के प्रश्नोत्तर हुये हैं फिर आश्रव सम्वरका भी पूर्ण विवर्ण किया गया है इस सूत्रके बयानवें लाख सोलह सहस्र (९२१६०००) पद हैं और व्याकरणसम्बन्धि भी नानाप्रकारकी संख्यात वाचनादि हैं।

(११) विपाकसूत्र—इसके दो श्रुतस्कन्ध हैं, बीस २०

अध्याय हैं प्रथम श्रुतस्कन्धके दस १० अध्यायोंमें दुःखविपाकी जीवोंका वर्णन किया गया है, फिर जिस प्रकार उन जीवोंने दुष्कर्म किये हैं, उनका फल सविस्तर बतलाया है द्वितीय श्रुतस्कधमें सुखविपाकका विस्तारपूर्वक कथन है जिन २ जीवोंने जिस २ प्रकार शुभकर्मोंको उपार्जन किया है, फिर जिस प्रकार उनके फलोंको अनुभव करेंगे इत्यादि विषयोंको इस सूत्रमें वर्णन किया गया है और अनेक प्रकारकी शिक्षायें उपलब्ध होती हैं और इसके एक करोड़ चौरासी लाख बाईस हजार (१८४२२०००) पद हैं सख्यात वाचनादि हैं।

(१२)दृष्टिवादाग—इसके पांच विभाग (अध्याय) हैं जैसे कि–परिक्रम (१) सूत्र (२) पूर्व (३) अनुयोग (४) और चूलिका (५) और इसमें अनेक विषयोंका विवर्ण है अपितु महान् इसकी सख्या है, ऐसा कोई भी विषय नहीं है जिसका इसमें वर्णन न किया हो और विशेष द्वादशांगका विवर्ण समवायांग सूत्र वा नदिसूत्रसे जानलेना चाहिये इस प्रकार गणधरोंने अगसूत्रोंकी रचना की और फिर उपांगसूत्र, छेदसूत्र, मूलसूत्र इत्यादि अनेक सूत्रोंकी रचना की और श्रीभगवानने स्थान २ में विचरकर अनेक भव्य प्राणि-

[1] चतुर्दश पूर्वोंके लिखनेमें १६३८३ हस्तियोंके प्रमाणमें (मषी) स्याही लगती है किन्तु यह विद्या क्षयोपशम भावके ही आधार पर है और पूर्वोंमें प्रत्येक २ विषयोंका पूर्ण विवर्ण किया हुआ है नदी आदि सिद्धातोंसे इनका विवर्ण देखना चाहिए।

योंको संसारसे पार किया और अनेक राजाओंको जैन बनाया और आठ महाराजाओंको दीक्षित भी किया यथा—

वीरगतराजा, वीरयगराजा, संजयराजा, श्वेतराजा, शिवराजा, उदायनराजा, अलाखराजा, शांखराजा, काशीवर्द्धनराजा, और अनेक राजकुमारोंको भी दीक्षित किया यथा–मेघकुमार, अभयकुमार, सुबाहुकुमार, अतिमुक्तकुमार, इत्यादि और अनेक राजाओंकी देवियोंने भगवान्‌के समीप दीक्षित होकर कर्मोंके क्षय करनेहारी कठिन तपस्या की और भगवान्‌ने अपने सत्योपदेश द्वारा चतुर्दश सहस्र मुनि[1] किए और ३६ सहस्र आर्यायें की और एक लाख उनसठ हजार व्रतधारी श्रावक बनाये और तीन लाख अठारह सहस्र श्राविकायें हुई।

चतुर्दश पूर्वभृतां श्रमणानां शत त्रयम् ।
त्रयोदश शत्यवधि ज्ञानिनां सप्तशत्यथ ॥
वैक्रियलब्ध्यनुत्तरगतिकेवलिनां पुनः ।
मनोविदां पञ्चशती वादिनां तु चतुःशती ॥

इन दो श्लोकोंमें यह वर्णन किया है कि–श्रीभगवान्‌ के मुनि संघमें चौदह हजार १४००० मुनियोंमें से तीनसौ (३००) मुनि चतुर्दश पूर्वधारी और तेरह सौ (१३००) अवधि ज्ञानके धारक थे. सातसौ (७००) मुनि वैक्रिय लब्धिके धरनेवाले और सातही सौ ७०० केवल ज्ञानके

१ मुनिसंघका पूर्ण वर्णन श्री उववाई सूत्रसे जानना चाहिये क्योंकि वहां पर भगवान्‌ के साथ रहनेवाले मुनियोंका भली प्रकारसे वर्णन किया गया है।

धारी थे किन्तु मनः पर्यवज्ञानके धारक पाचसौ (५००) और वादी (शास्त्रार्थ करनेवाले) चार सौ (४००) थे, जिनमें अनेक मुनि लब्धियोंके धरता शाप वा अनुग्रह करनेमें भी समर्थ थे किन्तु वह समर्थ होते हुये भी अपने स्वरूपमें निमग्न रहते थे।

: भगवान्‌ने मुखारविन्दसे धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल और जीव इन षट् द्रव्योंका भली प्रकारसे वर्णन किया और जीवतत्त्व, अजीवतत्त्व, पुण्यतत्त्व, पापतत्त्व, आस्रवतत्त्व, सम्वरतत्त्व, निर्जरातत्त्व, बन्धतत्त्व, मोक्षतत्त्व इन नौ ९ तत्त्वोंका भी विवेचन किया, फिर नाम, स्थापना, द्रव्य, और भाव तथा प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और आगम, इस प्रकार निक्षेप और प्रमाणोंको प्रतिपादन किया फिर सात नयों द्वारा पदार्थोंके स्वरूपको दिखलाया यथा—नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ और एवभूत। अतमें प्रतिपादन किया कि—

"सुचिण्णा कम्मा सुचिण्णा फलाभवति
दुचिण्णा कम्मा दुचिण्णा फला भवंति"

अर्थात् शुभकर्मों के शुभ ही फल होते हैं और दुष्टकर्मोंके अशुभ फल होते हैं किन्तु कर्मोंसे रहित होकर जीव मुक्त हो जाता है फिर उस जीवको किसी प्रकारका भी दुःखोंका अनुभव नहीं करना पडता, किन्तु वह जीव आठ कर्मोंसे रहित सर्वज्ञ और सर्वदर्शी होता है।

भगवान्के समवसरणमें जो महामानी पुरुष आते थे, वह भी भगवान् की अतिशय देखकर अपने सशयोंको दूर करके श्री भगवान्के शिष्य हो जाते थे तथा उनका मान किसी निमित्त द्वारा दूर हो जाया करता था. यथा—

दशार्णभद्र राजाका मान इन्द्र महाराजने दूर किया और दशार्णभद्र नरेन्द्र दीक्षित हुआ और परम सुकुमाल शालिभद्र आदि शेठ भी भगवानके चरणारविन्दमें दीक्षित हुये श्री भगवान् महावीर स्वामीजीने* गोशालाजीके केवल होनहार वादका खण्डन करके काल, स्वभाव, नियति, कर्म, और पुरुषार्थवादको स्थापन किया।

उसी कालमें गौतमबुद्धने अपने अफलवादका प्रचार करना प्रारम्भ किया हुआ था तब श्रीभगवान्ने अफलवादका भी खण्डन किया और आर्द्रकुमारादि राज्यकुमारोंने बुद्धके साथ शास्त्रार्थ करके गौतमबुद्धको पराजय किया अपितु भगवान्के कथन किये हुये सत्यवाद की (आत्मवाद) चारों ओर उद्घोषणा करदी लाखों प्राणियोंको अहिंसामय धर्ममें स्थापन करके मोक्ष अधिकारी बनाया।

मुनियोंके पाच महाव्रत दश प्रकारका श्रमणधर्म यावत् द्वादश प्रकारके तपकर्म प्रतिपादन किये और गृहस्थोंके द्वादश व्रत एकादश प्रतिज्ञायें प्रतिपादन कीं, असरय वा अनंत आत्माओंके प्राण बचाये, अहिंसा धर्मको उच्च कोटिमें अंकित किया प्राणिमात्रको धर्माधिकार दिया गया. इसी का-

---

* गोशालाका विवर्ण भगवती सूत्रके १५ वें शतकमें देखना चाहिये

रणसे कर्मोसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र चारों वर्ण स्थापन किये. सैकडो आत्माओंने अहिंसा धर्मका सर्वत्र प्रचार करके शास्त्रविहीत होती हुई हिंसाको दूर किया और नास्तिक वादका खण्डन करके आस्तिक वादको स्थापन किया आत्माको स्वतन्त्र बतलाकर कर्मकर्त्ता वा भोक्ता आत्माही है इस प्रकार बतलाकर लाखों जीवोंके सशयोंको छेदन किया। इसप्रकार श्रीभगवान्ने धर्मप्रचार दूर देशोपर्यन्त करके अन्तिम चतुर्मास पापापुरी नगरीमें हस्तिपाल नामक राजाकी शुल्कशाला दफ्तर में किया आपने इस चतुर्मासमें कर्मवाद आत्मावाद संसार द्रव्यार्थिक नयापेक्षासे अनादि पर्यायार्थिक सादि है इस प्रकार अनेक उपदेश दिये।

एक समयकी वार्ता है कि–श्रीभगवान् वर्धमान स्वामीजीसे विनयपूर्वक रोहा नामक आपके सुयोग्य शिष्य निम्न प्रकारसे प्रश्न पूछने लगे और आपने उनके संशय दूर किये जैसे कि—

प्रश्न—हे भगवन्! प्रथम लोक है किम्वा अलोक है। ✓

उत्तर–हे रोहा! यह दोनों पदार्थ अनादि हैं क्योंकि–यह दोनों किसीके बनाये हुए नहीं हैं यदि इनका कोई निर्माता मानाजाये तब यह पूर्व वा पश्चात् सिद्ध हो सक्ते हैं सो जब निर्माताका अभाव है तब इनका अनादित्व स्वतः

---

१ रोहाके सकल प्रश्नोत्तर भगवती सूत्रके प्रथम शतकके ६ छटे उद्देशमें हैं उसमें से पढ लीजिये यह भी उसमें से लिये गये हैं।

ही सिद्ध है अनादि होनेसे इनको प्रथम वा अप्रथम नहीं कह सक्ते हैं।

प्रश्न—प्रथम जीव है वा अजीव है।

उत्तर—हे भद्र ! जीव और अजीव दोनों अनादि हैं क्योंकि- जब इनकी उत्पत्ति मानी जाये तब कार्यरूप जीवका नाश अवश्यही होगा जब नाश सिद्ध होगया तब नास्तिक वादका प्रसंग आजायगा फिर पुण्य पाप बंध मोक्षादि आकाशके पुष्पवत् सिद्ध होंगे तथा दोनोंका कारण क्या है इस प्रकारकी शका होनेपर–संकर वा अनवस्था दोषकी भी प्राप्ति सिद्ध होगी इस लिये यह दोनों वस्तुए स्वतःसिद्ध होनेसे अनादि है।

प्रश्न–हे भगवन् ! प्रथम भव्य जीव हैं किम्वा अभव्य जीव हैं।

उत्तर–हे रोह ! मोक्षगमन योग्य वा अयोग्य यह भी दोनों प्रकारके जीव अनादि हैं।

प्रश्न–हे भगवन् ! प्रथम मोक्ष है किम्वा संसार है।

उत्तर–हे रोह ! दोनोंही अनादि हैं।

प्रश्न–हे भगवन् ! प्रथम मोक्षात्मा है वा ससार आत्मा

उत्तर–हे रोह ! ससार आत्मा वा मोक्ष आत्मा यह भी अनादि है इनको प्रथम वा अप्रथम नहीं कहा जा क्योंकि–आदि नहीं है इस लिये मोक्ष आत्मा और दोनों अनादि हैं।

प्रश्न-हे भगवन्! प्रथम अंडा और पीछे कुकडी है वा प्रथम कुकडी पीछे अडा है।

उत्तर-हे रोह! अडा कहासे उत्पन्न होता है हे भगवन्! कुकडीसे फिर कुकडी कहासे उत्पन्न होती है हे भगवन्! अडासे हे रोह! जब इस प्रकारसे दोनोंका सम्बन्ध है तब सिद्ध हुआ कि-यह दोनों अनादि हैं प्रथम कौन है इस प्रकार नहीं कह सक्ते।

इसी प्रकार रोह नामक शिष्यने अलोकान्त सात नरक सातही घनोदधि और नीचेके सात आकाश घनवात पृथ्वी द्वीप सागर भरतादि क्षेत्र नारकीय समय कर्म लेश्या दृष्टि दर्शन ज्ञान अज्ञान, सज्ञा, शरीर, योग, उपयोग द्रव्य, प्रदेश पर्याय काल इत्यादि सर्व विषयमें प्रश्न किये श्री भगवान्ने सर्वके उत्तरमें यही प्रतिपादन किया कि-यह सर्व पदार्थ अनादि हैं इनको प्रथम वा अप्रथम नहीं कह सक्ते क्योंकि-यह पदार्थ किसीके बनाये हुए नही हैं जब रोहा नामक मुनिके सर्व सशय छेदन किये गए फिर श्री गौतमप्रभुजीने श्री भगवान्से प्रश्न किया कि-हे भगवन्! गर्भावासमें जीव इंद्रिय लेकर आता है वा अनिंद्रिय होकर गर्भावासमें जीव प्रविष्ट होता है तब श्री भगवानन्ने प्रतिउत्तरमें प्रतिपादन किया कि—

हे गौतम! इंद्रियोंको लेकर भी आता है और छोडकर भी आता है तब श्री गौतम प्रभुजीने फिर शका की कि-हे

१ यह गर्भावासके प्रश्नोत्तर भगवतीसूत्रके प्रथम शतकके ८ व उद्देशमें से लिये गये हैं।

भगवन्! यह कथन किस प्रकारसे सिद्ध है तब श्री भगवान् ने फिर उत्तर दिया कि-हे गौतम! द्रव्य इंद्रियोंको जीव छोड़कर आता है और भावेंद्रियां (सत्तारूप) को जीव लेकर आता है जिसके द्वारा फिर द्रव्य इंद्रियां की निष्पत्ति हो जाती है। गौतमजीने फिर प्रश्न किया कि-हे भगवन्! जीव शरीरको छोडकर गर्भावासमें आता है वा शरीरको लेकर गर्भावासमें आता है श्री भगवान्ने उत्तरमें प्रतिपादन किया कि-हे गौतम! आत्मा शरीरको छोडकर भी आता है और लेकरभी आता है जैसे कि-औदारिक शरीर, वैक्रिय शरीर, आहारिक शरीर इन तीनों शरीरोंको छोडकर तेजस और कार्मण्य शरीरोंको लेकर जीव गर्भावासमें प्रवेश करता है क्योंकि-कर्मोंके भारसे जीव इसप्रकारसे भारी हो रहे हैं जैसे कि-ऋणी पुरुष ऋणके भारसे भारी होता है यद्यपि ऋणीके शिरपर प्रत्यक्षमें कोई भी भार नहीं दीखता तथापि उसकी आत्मा भारसे युक्त होती है उसी प्रकार जीवको कर्मोंका भार है।

इस प्रकारसे श्रीभगवान् ३४ अतिशय युक्त और ३५ वाणीसे विभूषित देश २ में धर्मोद्घोषणा करते हुए कुनाल देशकी कयंगला नामक नगरीमें पहुंचकर कयंगला नगरीके बाहिर छत्रपलाश नामक उद्यानमें विराजमान हुए तब नगरके अनेक लोग श्री भगवान्के दर्शन करने वा पवित्र वाणीके सुननेके लिये आने लगे उसी समय कयंगला नगरीके समीपवर्ती एक श्रावस्ती नगरीमें परि-

व्राजक धर्म का पालन करनेवाला स्कधक नामक सन्यासी वसता था वह पिंगल नामक निर्ग्रंथ श्रावकसे प्रेरित होकर श्रीभगवान्के समीप प्रश्न पूछनेके लिये आरहा था तव श्री भगवान्ने श्री गौतमजीसे कहाकि–हे गौतम ! आज तू अपने प्रियमित्रको देखेगा। तव श्रीगौतमजीने कहा कि–हे भगवन् ! कौनसे प्रिय मित्रको मैं देखूंगा तव श्रीभगवान्ने कृपाकी कि स्कधक परिव्राजकको देखेगा श्रीगौतमजीने फिर पूछा कि–हे भगवन् ! कब ? श्रीभगवान्ने कहा कि–आजही। इतनी वार्त्ता करतेही थे कि स्कधक सन्यासी समवसरणके समीपही आ पहुचे तव गौतमजी उनको वडे प्रेमसे मिले और प्रेमपूर्वक उनका स्वागत किया और प्रश्नविषयक वार्त्ता सर्व कह सुनाई तव स्कधकजीने कहा कि– भो गौतम ! यह मेरी गुप्तवार्तायें तुम कैसे जानते हो तव श्रीगौतमजीने कहा कि–हे स्कधक ! श्री भगवान् सर्वदर्शी हैं मैंने उनसे तुह्मारी वार्त्तायें सुनी हैं तव स्कधकजीने वडे हर्षपूर्वक श्री भगवान्के समीप जाकर वदना नमस्कार की और भगवान्की दिव्य मूर्तिको देखकर वडे प्रसन्न हुए क्योंकि–श्रीभगवान् अतिशययुक्त नित्य आहार करनेवाले शरीरकी लक्ष्मीको उत्कृष्ट प्राप्त थे तव श्री भगवान्ने कहा कि–भो स्कधक ! तुह्मारे से पिंगलने प्रश्न पूछे और उन्हीं प्रश्नोंकी जिज्ञासा करते हुए तुम यहापर आये हो क्या यह वार्ता सत्य है ?

---

१ स्कधकजी के प्रश्नोत्तर भगवतीसूत्रके द्वितीय शतक के प्रथम उद्देश में से लिये गये हैं ।

तब स्कंधकजीने श्री भगवान्के सत्यवाक्यको स्वीकार किया और आनंदपूर्वक श्रीभगवान्के दर्शन करने लगे तब श्रीभगवान् बोले कि–हे स्कंधक! मैं तुमको उन प्रश्नोंके उत्तर देता हूं।

भो स्कंधक! मैं लोकको चार प्रकारसे मानता हूं जैसे कि–द्रव्यसे १ क्षेत्रसे २ कालसे ३ और भावसे ४ द्रव्यसे लोक एक है १ क्षेत्रसे असंख्येयक योजन कोटाकोटि प्रमाण इस लोकका आयाम (लंबाई) विष्कंभ (चौडाई) है और एतावत् मात्रही इसकी परिधि है २ कालसे लोक अनादि है क्योंकि–इसका निर्माता कोई नही है इस लिये कालसे लोक ध्रुव है नित्य है वा अक्षय, अव्यय, अवस्थित है ३ भावसे इस लोकमें वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, और संस्थानकी अनंत पर्यायें उत्पन्न होती हैं और नष्ट होती हैं इस लिये द्रव्य और क्षेत्रसे लोक सान्त है काल और भावसे लोक अनंत है अब मैं तुमको जीवविषय भी सुनाता हूं।

द्रव्यसे एक जीव सान्त है क्योंकि–सर्व जीव अनंत हैं इसलिये जब अनंत जीवोंमेंसे एक जीवका वर्णन करें तब एक जीवको सान्त कहते हैं और आकाशके असंख्येयक प्रदेशोंपर एकजीव स्थित है इसलिये भी जीव सान्त है कालसे जीव अनादि है क्योंकि–उत्पत्तिरहित है अतः जीव कालसे अनादि है भावसे जीव अनंत ज्ञानकी पर्याय अनंत दर्शनकी पय   चारित्र कीपर्याय अनंत गुरु   ल-

र्याय अनंत अगुरु लघुपर्यायसे अनत है इस लिये द्रव्यसे जीव सान्त, क्षेत्रसे भी सान्त, किन्तु काल और भावमे जीव अनत है और हे स्कधक! द्रव्यसे मुक्ति सान्त है क्षेत्रसे पैंतालीस ४५ लाख योजन की होनेसे भी सान्त है अर्थात् आदिसहित है कालसे मुक्ति अनादि है भावसे भी लोकवत् अनादि है और द्रव्यसे एक मोक्ष आत्मा सान्त है और क्षेत्रसे असख्येयक आकाशके प्रदेशोंपर ठहरने से एक मोक्ष आत्मा सान्त है और कालमे जब कोई व्यक्ति मोक्षगत हुआ तब उस काल की अपेक्षासे उसकी आदितो है परतु उसका अवसान (अत) नहीं है क्योंकि-मुक्ति अपुनरावृत्तिवाली होती है। भावसे मोक्ष आत्मा अनत ज्ञान, अनत दर्शन, अतन चारित्र, (स्वरूपमें रमता) अनत अगुरु लघु पर्यायोंसे युक्त है इसलिये द्रव्यसे क्षेत्रमे सिद्ध सान्त है कालसे गमनकी अपेक्षा सान्त है किन्तु अपुनरावृत्तिकी अपेक्षा अनत है और भावसे सिद्ध आत्मा अनत है और हे स्कधक! द्वादश प्रकारकी मृत्युओंसे जीव ससारकी वृद्धि कर लेता है जैसे कि—

अपने निज धर्मसे पतित होकर मरनेसे १ विषयोंके वश होकर मरनेसे २ अन्तःकरणकी शल्यको दूर न करके मरनेसे ३ मनुष्य भवकी आशा करके मरनेसे ४ पर्वतसे गिरके मरनेसे ५ वृक्षसे पतित होकर मरनेसे ६ जलमें प्रवेश करके मरनेसे ७ अग्निमें जलकर मरनेसे ८ विष भक्षण करके मरनेसे ९ शस्त्रके प्रयोगसे १० फासी लेकर मरनेसे ११ मृतकके बीच प्रवेश करके १२ इस प्रकार मृत्युगत होनेसे, हे स्कधक! जीव

अनंत ससारकी वृद्धि करलेता है और नरक, तिर्यग्, मनुष्य, देवके अनत भवोंके कर्मोंका आत्मासे सचय कर लेता है फिर इस अनादि चक्रमें भ्रमण करने लग जाते हैं और जब आत्मा शातिके साथ क्रोध, मान, माया, लोभको छोड़कर अनशन व्रत धारण करके पादोपगमन वा भत्याख्यानके साथ मृत्युगत होता है तब ससारचक्रसे पार हो जाता हैं इस प्रकार श्रीभगवान्‌के वचनोंको सुनकर स्कधक सन्यासी कात्यायन गोत्रीयको वैराग्य उत्पन्न हुआ और उसने विज्ञप्ति की कि–हे भगवन्! मुझे आप धर्म सुनायें। तब श्रीभगवान्‌ने बडे विस्तारपूर्वक स्कधकप्रमुख महासभासदोंको धर्मकथा सुनाई तब स्कधकजीने उसी समय भगवान्‌से दीक्षा धारण की। फिर श्रीभगवान् धर्मोपदेश देते हुए अन्य समय वाणिजग्राम नगरके बाहिर द्युतिपलाश नामक उद्यानमें विराजमान हुए तब राजा वा नगरवासी सहस्रों लोग श्रीभगवान्‌की पवित्रवाणीके सुननेके लिये गये। उसी समय उस नगरमें एक सोमलनामक ब्राह्मण वसता था जो परम विद्वान् और अध्यायकी वृत्तिमें था उसकी शालामें ५०० [1]विद्यार्थी विद्या अध्ययन करते थे उसने भी नागरिक पुरुषोंसे श्रवण किया कि–नगरसे बाहिर श्रीभगवान् महावीर स्वामी विराजमान हुए है। तब उसके यह भाव उत्पन्न हुए कि–मैं श्रीभगवान्‌से जाकर प्रश्न पूछूं यदि मेरे प्रश्नोंका ठीक उत्तर

१ सोमल ब्राह्मणके प्रश्नोत्तर भगवतीसूत्रके १८ व शतक्के १० वे उद्देशमें से लिये गये हैं।

मिला तब तो मैं उनको वंदना करूगा नहीं तो सभाके समक्ष उनका अपमान करूगा इस प्रकार वह विचार कर स्नानादि करके अपने साथ १०० सौ विद्यार्थी लेकर श्रीभगवान्के पास गया और श्रीभगवानके सामने खड़ा होकर इस प्रकार प्रश्न पूछने लगा।

हे भगवन्! आप यात्रा मानते हो १ और यपनीय (जाप) कार्य मानते हो २ सपूर्ण सुखमानते हो ३ शुद्ध विहार (वसति) मानते हो ४ तब श्रीभगवान्ने उत्तरमें प्रतिपादन किया कि–हे सोमल! मैं उक्त चारों वस्तुओंको मानता हू तब फिर सोमलने कहा कि–आप इनका स्वरूप वर्णन करें तब श्रीभगवान्ने उक्त चारों प्रश्नोंका निम्नप्रकारसे उत्तर दिया। जैसेकि–हे सोमल! जो तप, नियम, सयम, स्वाध्याय, ध्यान, आवश्यक, आदियोगोंमें यत्न कियाजाता है उसे मैं यात्रा मानता हू।

२ जो इद्रिय और मनको वश कियाजाता है उसे मैं (यपनीय कार्य) जाप मानता हू।

३ और जो शारिरक वा मानसिक दुःखोंसे रहित होना है उसे मैं सुख मानताहू।

४ जो बागोंमें, उद्यानोंमें, देवकुलोंमें, सभाओंमें इत्यादि स्थानोंमें जो स्त्री, पशु, क्लीवरहित वा निर्दोष वसतियां हैं उनको मैं प्राशुक (शुद्ध) विहार (स्थान) मानता हू।

---

१ पूर्वकालमें धर्मस्थानों वा एकान्त स्थानोंको "विहार" संज्ञासे कहते थे अर्थात् उन स्थानोंको विहार कहते थे

जब सोमल अध्यापकने इन उत्तरोंको श्रवण किया तब उसके मनमें यह भाव उत्पन्न हुए कि–इनकी बुद्धिकी भी परीक्षा करलूं तब अध्यापक जीने पूछाकि–हे भगवन्! "सरसव भक्ष्य है किम्वा अभक्ष्य है" श्रीभगवान्ने उत्तरमें प्रतिपादन कियाकि–हे सोमल! सरसव भक्ष्य भी है और अभक्ष्य भी है क्योंकि–प्राकृत भाषामें सरसव सादृश्य मित्रका नाम भी है और सरसव (सरसों) एक धान्यका नाम भी है सो भगवान्ने साधुवृत्तिकी अपेक्षासे उत्तर दिया कि–हे सोमल! सरसव दो प्रकार से वर्णन किये गए हैं जैसे कि मित्र सरसव, और धान्य सरसव, सो मित्र सरसव तीन प्रकारसे वर्णन कियागया है जैसेकि–साथही जन्मा हुआ १ साथही वृद्धि पाया हुआ २ और साथ ही क्रीडा कीहुई ३ सो वह मुनियोंको अभक्ष्य हैं किन्तु धान्य सरसव भी दो प्रकारसे वर्णन किये गए हैं जैसे कि–शस्त्रपरिणत १ अशस्त्रपरिणत २। एषणीय १ अनेषणीय २ याचित १ अयाचित २ लब्ध १ अलब्ध २ सो यह प्रथम पक्षवाले सर्व सरसव मुनियोंको अभक्ष्य हैं द्वितीय पक्षवाले भक्ष्य हैं फिर अध्यापकने पूछा कि–हे भगवन्! मास भक्ष्य है किम्वा अभक्ष्य है श्रीभगवान्ने उत्तरमें प्रतिपादन किया कि–हे सोमल! मास भक्ष्य भी है और अभक्ष्य भी है किन्तु मास तीन प्रकारसे वर्णन किया गया है जैसेकि–
कालमास [illegible] धान्य मास ३ सो द्रव्यमास चादी माप ([illegible] कहते हैं कालमास

मासोंके नाम हैं सो यह दोनों प्रकारके मास मुनियोंको अभक्ष्य हैं किन्तु धान्यमास (माह) धान्य सरसके समान जानना चाहिये। फिर अध्यापकजीने प्रश्न किया कि–हे भगवन्! कुलत्थी भक्ष्य हैं किम्वा अभक्ष्य है श्रीभगवान्ने उत्तर दिया कि–हे सोमल! कुलत्थी भी दो प्रकारसे वर्णन की गई है जैसे कि–धान्य कुलत्थी और द्वितीय स्त्री कुलत्थी सो धान्य कुलत्थी सरसव धान्यवत् है किन्तु स्त्री कुलत्थी तीन प्रकारसे वर्णन की गई है जैसे कि–कुलकी कन्या १ कुलकी वधू २ और कुलकी माता ३ सो यह अभक्ष्य है क्योंकि–प्राकृत भाषामें 'त्थी' स्त्रीको कहते हैं तब "कुल" और "त्थी" का समास करनेसे कुलत्थी प्रयोग बन जाता है फिर सोमल ब्राह्मणने पूछा कि–हे भगवन्! आप एक हैं किम्वा आप दो हैं वा आप अक्षय, अव्यय, अवस्थित हैं वा अनेक भाविभूत हैं! तब श्रीभगवान्ने उत्तरमें प्रतिपादन किया कि–हे सोमल! मैं एक भी हू यावत् अनेक भी हू फिर सोमलने पूछा कि हे भगवन्! किसप्रकार? तब भगवान् निम्न लिखितानुसार कहने लगे कि–हे सोमल! द्रव्यसे मैं एक हू क्योंकि–मेरी एक आत्मा है और ज्ञान दर्शनकी अपेक्षासे मैं दोभी हू और आत्म प्रदेशोंकी अपेक्षासे मै अक्षय, अव्यय, अवस्थित भी हू किन्तु उपयोग की (ज्ञानशक्ति) अपेक्षासे मैं अनेक भूत हू इस प्रकार श्रीभगवान्के प्रतिपादन किये हुए उत्तरोंको सुनकर सोमलने सहर्ष उन उत्तरोंको स्वीकार किया और सोमलने फिर

विज्ञप्ति की कि–हे भगवन्! अब आप मुझे धर्म सुनायें तब श्रीभगवान्ने महतीसभामें विस्तारपूर्वक षट् द्रव्य और नव तत्वोंका स्वरूप सुनाया और अंतमें प्रतिपादन किया कि–हे आर्यो! जैसे सुंदर भोजन विषमिश्रित खानेमें स्वादु और परिणाममें कटुक होता है इसी प्रकार पाप (हिंसादि) कर्म करनेमें सुदर लगते हैं और फलमें दारुण होते हैं किन्तु जैसे सुंदर भोजन औषधिमिश्रित खानेमें कटुक और परिणाममें सुंदर होता है इसी प्रकार शुभ कर्म (परोपकारादि) करने तो कठिन होते हैं किन्तु फल उनका बडा ही प्रिय होता है इस प्रकारके पवित्र उपदेशोंको सुनकर सोमलने श्रीभगवान्के समीप द्वादश व्रतरूप श्रावकधर्मको धारण किया इसी प्रकार श्रीभगवान्ने अनेक जीवोंको ससारमार्गमे अपने सत्योपदेश द्वारा पृथक् किया और प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, आगम, इन चारों प्रमाणोंका यथार्थ स्वरूप वर्णन किया फिर अनेक व्याख्यानोंमें आत्मवाद, लोकवाद, कर्मवाद और क्रियावाद के विषयको प्रमाण सहित प्रतिपादन किया फिर गौतमजीने श्रीभगवान्से प्रश्न किया कि–हे भगवन्! लोक स्थिति कितने प्रकारसे वर्णन कीगई है श्रीभगवान्ने प्रत्युत्तरमें प्रतिपादन किया कि–हे गौतम! लोक स्थिति आठ प्रकारसे वर्णन की गई है जैसे कि–आकाश प्रतिष्टत वायु है १ और वायु प्रतिष्टत उदधि है २ उदधिपर पृथ्वी है ३ पृथ्वी ऊपर त्र[illegible] और स्थावर [illegible] ७ अजीव जीवके आधारपर है॥

कर्मके आधारपर है ६ यह ससारी जीवोंकी अपेक्षासे कथन किया गया है सो जीवने अजीव सगृहीत किया हुआ है ७ और जीवको कर्मोंने सगृहीत किया हुआ है ८ और इसकी सिद्धिके लिये जल आदिकी गोतलोंके अनेक दृष्टान्त हैं जैसेकि–पानीकी भरी हूई बोतलके मुख नघनको जय लोग दूरी करते हैं फिर उसके मुख पर वायु आ जाती है तन वह पानी वायुके आधारपरही ठहर जाता है इसी प्रकार आकाशादिके ऊपर पदार्थ ठहरे हुए हैं तथा जैसे दृति (मशक) वायुसे पूरित कटि भागके बधनसे लोग नदियोंको तैरते हैं इसीप्रकार लोक स्थिति है इस दृष्टान्तसे यह सिद्ध किया गया है कि–वायुकी शक्ति भार महारनेकी होती है और पदार्थोंमें परस्पर आकर्षण शक्ति है इसी लिये वह परस्पर स्नेहभावनद्ध हैं और पदार्थ अगुरलघु, लघुगुरु, गुरलघु, इत्यादि अनेक भेदोंसे देखे जाते हैं इस प्रकार लोक स्थिति होती है श्रीगौतमजी श्रीभगवान्‌के उत्तरोंको सुनकर बडे प्रसन्न हुए।

इस प्रकार भगवान्‌ने अनेक जीवोंके सशयोंको छदन किया फिर यह भी प्रतिपादन किया कि–सघकी वैयावृत्य (सेवा) करता हुआ जीव ससार बन्धनोंसे अवश्य छूट जाता है इसलिये परस्पर वैरभावको छोडकर क्षमाभाव धारण करो और सर्व जीवोंके हितैषी बनो धर्मपतितोंको धर्ममें स्थिर करो और प्राणीमात्रके सहायक बनो जिस्से तुम अपना उद्धार करनेमें समर्थ हो सको।

इस प्रकार अनेक उपदेश दिये और यह भी सिद्ध किया कि-जैसे जीव और अजीव अनादि है तथा ससार और मोक्ष यह दोनों अनादि हैं इस ससारका कर्त्ता हर्त्ता कोई भी नहीं है, किन्तु जैसे चुम्बक पत्थरमें आकर्षण शक्ति होती है, उसी प्रकार आत्मा और कर्मोंमें आकर्षण शक्ति है, इस लिये प्राणी नानाप्रकार की योनियोंमें भ्रमण करता है, जब इस आत्माके तप और सयमके द्वारा कर्म क्षय हो जाते हैं, तब यह आत्मा मुक्त हो जाता है फिर वह मुक्त आत्मा ससार चक्रमें भ्रमण नहीं करता और वह उस दशामें सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हो जाता है और अक्षय सुखके अनुभव करने वाला वा अनत शक्ति सम्पन्न भी होता है इसलिये प्रत्येक व्यक्तिको मोक्षके लिये परिश्रम करना चाहिये।

इस प्रकार उपदेश देते हुये और आयुको पूर्ण होती हुई देखकर आपने दो दिनोंका अनशन (संथारा) व्रत धारण किया, तब आपके दर्शनोंके लिये अष्टादश देशोंके राजा आये हुये थे आपने उनको एक पद्मासन बैठकर पचपन ५५ अध्याय दुःखविपाकके वर्णन किये जिनमें सिद्ध किया कि-प्राणी किसप्रकार अशुभ कर्म करता है और किस प्रकार उन्होंके दुःखोंका अनुभव करता है और ५५ अध्याय सुखविपाकके वर्णन किये जिनमें न्याय, नीति, धर्म, सदाचार आदि कृत्योंके द्वारा प्राणी शुभ विपाकोंका अनुभव करता है और छत्तीस ३६ अध्ययन श्रीउत्तराध्ययन सूत्रके प्रतिपादन किये जिसमें शिक्षा, उपदेश, वैराग्यमय उपदेश,

आजकल यावन्मात्र श्रुतज्ञान विद्यमान है वह सर्व आपके मुखारविंदसे निकला हुआ है जो प्रत्येक व्यक्तिको पठन करने योग्य है।

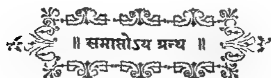
इस समय हम आग्रह पूर्वक विद्वान् जनोंको निवेदन करते हैं कि यदि आपने आत्मवाद और कर्मवाद वा जीव तत्त्व आदिका पूर्ण विवरण देखना हो तो श्रीभगवान्के कथन किये हुये उपदेशोंको देखो जिससे आप लोगोंको निश्चय हो जावे कि वास्तवमें तत्त्व क्या है। श्रीभगवान्के जन्मादि कल्याण उत्तराफाल्गुणि में होनेपर भी स्वाति नक्षत्रमें निर्वाण हुआ उस समय श्रीभगवान् की जन्म राशिमें भस्म ग्रह २००० वर्षकी स्थितिवाला बैठा हुआ था, जिसके कारण दो हजार वर्ष पर्यन्त श्रीभगवान्के शासनको पीड़ा हुई। अब भस्मग्रह भी दूर हो गया है, इस लिये प्रत्येक व्यक्तिको श्रीभगवान्के शासनको उच्चकोटिमें लाकर अहिंसा धर्मका प्रचार करना चाहिये।

श्रीभगवान्के कथन किये हुये तत्वोंका सर्वत्र प्रचार करना चाहिये, परस्पर प्रीतिभावसे भगवान्की शिक्षाओंका अनुकरण करना चाहिये और यथाशक्ति दान, शील, तप और भावद्वारा अपनी आत्माको अलंकृत करना चाहिये क्योंकि–इन चारों मार्गोंको भगवान्ने आसेवन किया है प्रत्येक मनुष्यको तपद्वारा अपनी इन्द्रियोंका भी निग्रह करना चाहिये क्योंकि—श्रीस्थानाग सूत्रके छठे स्थानमें लिखा है कि—

समणे भगवं महावीरे छठेण भत्तेणं अपाणएण मुण्डे जाव पव्वइए समणे भगवं महावीरे छठेण भत्तेणं अपाणएणं अणते अणुत्तरे जाव केवलनाणे समुप्पणे समणे भगव महावीरे छठेण भत्तेण अप्पाणएणं सिद्धे जाव सव्वदुक्खप्पहीणे ।

अर्थात् दो उपवासके साथ श्रीभगवान् दीक्षित हुये, दो उपवासके साथही केवलज्ञानके धारक हुए और दो उपवास के साथही श्रीभगवान् निर्वाण हुये, इसलिये प्रत्येक व्यक्तिको तप कर्म धारण करना चाहिये ।

सो इस स्थानपर श्रीभगवान्‌का जीवन वृत्तांत पूर्ण किया गया है इस जीवनका साराश यह है कि—अपने जीवनको भगवान्‌के सत्योपदेश द्वारा पवित्र करना चाहिये और श्रीभगवान्‌के तत्वोंका सर्वत्र प्रचार करना चाहिये, जिसके द्वारा अनंत आत्माओंको अभयदान प्राप्त हो और आप सुगतिके अधिकारी हों ।



ज्ञानदीपिका

अर्थात्

जैनोद्योत

इस ग्रन्थमें स्वमत, परमत तथा देवगुरु धर्म का कथन और चतुर्गतिरूप संसार का अनित्य स्वरूपादिक उपदेश है और दया क्षमा आदि ग्रहणरूप शिक्षायें हैं

इस पुस्तक के दो भाग हैं प्रथम भाग में मुनि आत्मारामजी संवेगी रचित जैन तत्वादर्श ग्रन्थमें जो २ शास्त्रों से विरुद्ध अर्थात् सूत्रों से अमिलत कथन हैं उनका सम्यक् प्रकार से अकाट्य युक्तियों द्वारा खण्डन किया गया है द्वितीय भाग में जैनधर्म अर्थात् क्षमा दयारूप जो सत्य धर्म है उसकी पुष्टता है इस भाग के पढने से स्वमत और परमत का बहुत अच्छा बोध हो जाता है यह आवृत्ति खतम होनेपर कागजकी तेजीके कारण ग्रन्थ मिलना दुर्लभ हो जावेगा यह पुस्तक उत्तम विलायती कागज पर सुन्दर मोटे अक्षरों में छपी हुई है सुन्दर कपडे की जिल्द बंधी हुई है पृष्ठ भी ३१५ हैं मूल्य केवल ॥।) है

प्राकृतव्याकरण.

इंग्लण्डीय भाषानुवाद सहित श्रीहृषिकेश भट्टाचार्य संकलित मूल्य १॥)

सत्यार्थचन्द्रोदय

इस पुस्तक में प्राचीन जैनधर्म (आत्माभ्यासी स्थानकवासी मतका) यथोक्तरूपसे सूत्रोंद्वारा केवल सविस्तर वर्णनही नही किया वरच सूत्र प्रमाण, कथा उदाहरण तथा युक्ति आदिसे सर्व साधारण के हस्तामलक कराने में किंचित् त्रुटि नही की वरच निक्षेपमूर्त्ति, भावनिक्षेप, मूर्त्तिपूजननिषेध, चैत्य शब्द वर्णन साधु साध्वियों के शास्त्रोक्त आचरण वा लक्षण वर्णन करने के अतिरिक्त प्रश्नोत्तर की रीतिपर पूर्णरूपसे श्वेताम्बराम्नाय, पीताम्बर धारियों के नवीनमार्ग का मूल सूत्रों, माननीय जैन ऋषियों के मन्तव्यों तथा प्रबल युक्तियोंसे खण्डन किया है और युक्तियें भी ऐसी प्रबल दी हैं कि जिनको जैनधर्म्मारूढ नवीन मतावलम्बियों के सिवाय अन्य साम्प्रदायिक भी खडन नही कर सके वरच बडे २ विद्वानों ने भी श्लाघा की है इसपुस्तक में विशेष करके श्रीआत्मारामजी सवेगी कृत जैन मार्ग प्रदर्शक नवीन कपोल कल्पित ग्रन्थों की पूर्ण आन्दोलना की है अधिक क्या लिखें इस पुस्तक में मूर्तिपूजा का बडी २ अकाट्य युक्तियों के द्वारा खूब अच्छी तरह खण्डन किया गया है सर्व जनों को उचित है कि इसको पढकर सत्यासत्य का निर्णय करें यह पुस्तक मोटे कागज पर मोटे अक्षरों में छपकर तय्यार हुआ है पृष्ट २२८ हैं विलायती कपडे की जिल्द सहित दाम ॥।) मात्र है

पद्मचन्द्रकोष.

अर्थात्

व्युत्पत्तिविषयसहित संस्कृत–भाषाकोष.

द्वितीयावृत्ति

इसमें २० हजार संस्कृतशब्द प्रकृतिप्रत्ययसहित भाषा में वर्णन है जिसको

श्रीमान् पंडित गणेशदत्त शास्त्री प्रोफेसर

ओरियंटल कालिज लाहौर ने निर्माण किया है

यह पुस्तक जगत् प्रसिद्ध निर्णयसागर मुम्बई छापेखाने में अतिउत्तम कागज पर छपा है, और गवर्नमेण्ट ने इस कोष की बडी २ प्रसिद्ध लाइब्रेरियों और कालिजों में एक २ कापी खरीद कर रक्खी है।

इस कोष पर बडे २ युरोप और भारत के प्रसिद्ध विद्वानों ने भी सर्वोत्तम सम्मतियें दी हैं, मूल्य केवल ३) मात्र है महसूल डाक।=)